[illegible]

11. 8. 13

# जम्मू-कश्मीर
# का
# कथांचल

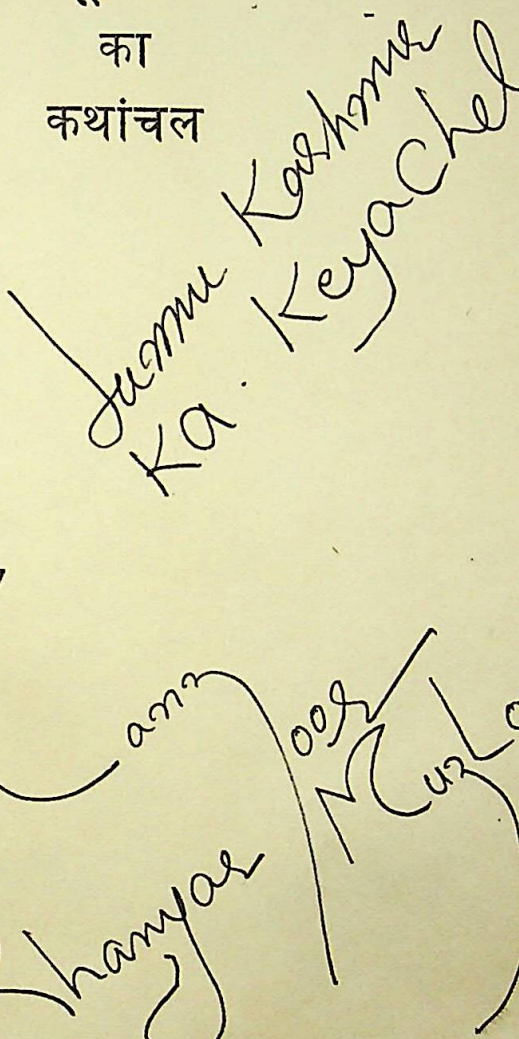

# जम्मू-कश्मीर
# का
# कथांचल

सोमनाथ कौल

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

**एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०**

मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

शो रूम : ४/१६ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

शाखाएँ :

माई हीरां गेट, जालन्धर-१४४००८
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१
८५/जे, विपिन विहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२
ब्लैकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, वम्बई-४००००१
खजांची रोड, पटना-८००००४
१५२, अन्ना सलाए, मद्रास-६००००२
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१
३, गाँधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग रेस कोर्स रोड, बंगलौर-५६०००९
६१३-७, महात्मा गाँधी रोड, एर्नाकुलम, कोचीन-६८२०११

(जे० एँड के० अकादेमी ऑव आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज की आर्थिक सहायता से प्रकाशित)

मूल्य : १०.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रविन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा मुद्रित ।

# दो शब्द

जम्मू तथा कश्मीर प्रदेश में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार का कार्य बड़े संतोषजनक रूप से चल रहा है। प्रदेश के मुख्यमंत्री शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह ने स्कूलों में हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न करके इस दिशा में अविस्मरणीय योगदान दिया है। जम्मू-कश्मीर प्रदेश की सांस्कृतिक अकादमी भी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आर्थिक अनुदान देकर इस पुनीत कार्य में सहायता करती है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रकार के अनुदान की सहायता से प्रकाशित हो रही है।

कश्मीर में हिन्दी कहानी का क्रमशः विकास होता जा रहा है। जम्मू क्षेत्र इस दिशा में कश्मीर से थोड़ा-सा आगे है, परन्तु उसका एक कारण यह भी है कि वहाँ हिन्दी जानने वालों की संख्या अधिक है। प्रस्तुत संग्रह में सात कहानियाँ संग्रहीत हैं। दो जम्मू क्षेत्र के लेखकों की हैं तथा पाँच कश्मीर क्षेत्र के लेखकों की। दो लेखक डोगरी भाषी हैं, दो की मातृ-भाषा कश्मीरी है तथा शेष ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा (बकौल कुछ बुद्धिजीवियों के) खड़ी बोली हिन्दी नहीं, अपितु ब्रजभाषा है। जो भी हो, पिछले बीस-बाईस वर्षों से कश्मीर में रहकर अध्यापन कार्य करने वाले लोग कश्मीरी चाहे थोड़ी-बहुत ही जानते हों, कश्मीर को खूब अच्छी तरह जानते हैं। ये सात कहानियां जम्मू-कश्मीर प्रदेश के सृजनात्मक हिन्दी लेखन का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा मुझे विश्वास है कि वे सुधी पाठक वर्ग को सन्तुष्ट कर सकेंगी। हाँ, एक शिकायत मुझे कश्मीरवासी तथा कश्मीरी-भाषी हिन्दी-लेखकों से यह है कि वे अपनी कहानियों में कश्मीरी परिवेश तथा वातावरण का चित्रण नहीं करते और न कश्मीर की अति

**एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०**

मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

शो रूम : ४/१६ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

शाखाएँ :

माई हीरां गेट, जालन्धर-१४४००८
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१
२८५/जे, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२
ब्लैकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-४००००१
खजांची रोड, पटना-८००००४
१५२, अन्ना सलाए, मद्रास-६००००२
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१
३, गाँधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग रेस कोर्स रोड, बंगलौर-५६०००९
६१३-७, महात्मा गाँधी रोड, एर्नाकुलम, कोचीन-६८२०११

(जे० एँड के० अकादेमी ऑव आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज की आर्थिक सहायता से प्रकाशित)

मूल्य : १०.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रविन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा मुद्रित ।

# दो शब्द

जम्मू तथा कश्मीर प्रदेश में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार का कार्य बड़े संतोषजनक रूप से चल रहा है। प्रदेश के मुख्यमंत्री शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह ने स्कूलों में हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न करके इस दिशा में अविस्मरणीय योगदान दिया है। जम्मू-कश्मीर प्रदेश की सांस्कृतिक अकादमी भी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आर्थिक अनुदान देकर इस पुनीत कार्य में सहायता करती है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रकार के अनुदान की सहायता से प्रकाशित हो रही है।

कश्मीर में हिन्दी कहानी का क्रमशः विकास होता जा रहा है। जम्मू क्षेत्र इस दिशा में कश्मीर से थोड़ा-सा आगे है, परन्तु उसका एक कारण यह भी है कि वहाँ हिन्दी जानने वालों की संख्या अधिक है। प्रस्तुत संग्रह में सात कहानियाँ संग्रहीत हैं। दो जम्मू क्षेत्र के लेखकों की हैं तथा पाँच कश्मीर क्षेत्र के लेखकों की। दो लेखक डोगरी भाषी हैं, दो की मातृ-भाषा कश्मीरी है तथा शेष ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा (बकौल कुछ बुद्धिजीवियों के) खड़ी बोली हिन्दी नहीं, अपितु ब्रजभाषा है। जो भी हो, पिछले बीस-बाईस वर्षों से कश्मीर में रहकर अध्यापन कार्य करने वाले लोग कश्मीरी चाहे थोड़ी-बहुत ही जानते हों, कश्मीर को खूब अच्छी तरह जानते हैं। ये सात कहानियां जम्मू-कश्मीर प्रदेश के सृजनात्मक हिन्दी लेखन का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा मुझे विश्वास है कि वे सुधी पाठक वर्ग को सन्तुष्ट कर सकेंगी। हाँ, एक शिकायत मुझे कश्मीरवासी तथा कश्मीरी-भाषी हिन्दी-लेखकों से यह है कि वे अपनी कहानियों में कश्मीरी परिवेश तथा वातावरण का चित्रण नहीं करते और न कश्मीर की अति

समृद्ध प्राचीन विरासत का ही उपयोग अपनी सामग्री में करते हैं। यह कमी खलती है।

डॉ० सोमनाथ कौल मेरे प्रिय छात्रों में से हैं। उन्होंने मेरे विभाग से ही एम० ए० तथा पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ का संग्रह किया है। कहानियों के साथ में उनकी समालोचना देकर उन्हें उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। अनुदान के नियमों तथा सीमाओं के कारण ईस संग्रह का कलेवर छोटा है। आशा है, भविष्य में अन्य इसी प्रकार के संग्रह प्रकाशित हो सकेंगे। डॉ० कौल को मैं इस प्रयत्न के लिए बधाई देता हूँ।

श्रीनगर
गणतन्त्र दिवस, 1983

**रमेश कुमार शर्मा**
आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, कश्मीर (भारत)

# क्रम संख्या


| अध्याय | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. शॉपिंग | श्री हरिकृष्ण कौल | 1-16 |
| 2. ललितादित्य के मार्तण्ड | श्री छत्रसाल | 17-34 |
| 3. दुहरी टूटन | डॉ० अय्यूब 'प्रेमी' | 35-49 |
| 4. चीख़ | डॉ० रमेशकुमार शर्मा | 50-63 |
| 5. अधूरी कहानी का हीरो | श्री रमेश मेहता | 64-71 |
| 6. क़बूल किया मैंने | श्रीमति बदरुन्निसा | 72-81 |
| 7. एक घण्टे लम्बी सड़क की नियति | डॉ० सोमनाथ कौल | 82-90 |

# श्री हरिकृष्ण कौल

स्वतंत्रता के बाद भारत के जिन अहिन्दी राज्यों के लेखकों ने हिन्दी की कहानी को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें श्री हरिकृष्ण कौल प्रमुख हैं। कौल जी संक्रमण-काल की पीढ़ी के साहित्यकार हैं। उन्होंने जीवन के तेरह-चौदह वर्ष पराधीन भारत में गुज़ारे किन्तु चेतना के जाग्रत होने पर उन्होंने स्वतन्त्र भारत में वह सब कुछ देखा जोकि आधुनिक संवेदना का हिन्दी-लेखक देखता और भोगता आ रहा है। उन्होंने आदर्श मोह तथा ऐसी ही दूसरी स्थितियों की परिणति अनादर्श तथा मोहभंग में देखी है। इधर उनका व्यक्तिगत जीवन बहुत ही दारुण एवं यातनापूर्ण रह चुका है। परिवार में उनका जन्म उस समय हुआ जबकि उनका घर आर्थिक विषमता के भार से टूट रहा था। उन्हें गरीबी की स्थिति का आत्म-स्वीकार है।[१] पस्ती की हालत ने उनको मानसिक तनावों की प्रक्रिया से गुजरने के लिए अभिशप्त किया है।

कौल जी व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के कलाकार हैं। जीवन की सही तथा मर्मान्तक तस्वीर को प्रस्तुत करने के लिए एवं बिम्ब-ग्रहण की सृष्टि के लिए उन्होंने व्यष्टि की बारीकियों (प्रश्न-अप्रश्न, सोच-समझ, समस्याएँ आदि) को बहुत ही

---

१. "बचपन में (मैंने) बहुत गरीबी देखी है।"
—गर्दिश के दिन : सारिका, जून २४, १९७७ ; पृ० ५४।

ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। उनका व्यष्टि-सत्य केवल व्यष्टि तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता बल्कि इसके माध्यम से उन्होंने समष्टि-सत्य के दूरगामी संकेत भी दिये हैं। **'इस हमाम में'**, **'नायक'**, **'यक्ष और टोपी'** तथा ऐसी ही दूसरी कहानियों में हरिकृष्ण कौल ने सीमित परिवेश के माध्यम से व्यापक सत्यों की ओर संकेत किये है।

कौल जी की कहानियों का स्वर प्रायः अद्यतन है। उनकी रचनाएँ आज के जीवन के समानान्तर चलती दिखायी देती हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी के कहानीकार ने अन्य अनुभवों के अतिरिक्त जिस विषम अनुभव को तीव्रता से महसूस किया उनमें से एक कटु अनुभव प्रशासन एवं राजनीति के क्षेत्रों में भ्रष्टाचार है। कहानीकार को यह महसूस हो रहा है कि पर-तन्त्र भारत में जिन राष्ट्रप्रेमियों ने देश को स्वतन्त्र कराने में कुछ योगदान दिया, स्वतन्त्र भारत में अब वे उसका हजारगुना पारिश्रमिक माँग रहे हैं। इसको वसूलने के लिए वे अन्धी मशीन की तरह उचित-अनुचित देखे बिना आम जनता को कुचलने रौंदने में कोई कसर बाकी नहीं रखते हैं। वास्तव में ये झूठे, मक्कार राजनीतिज्ञ एवं तथाकथित राष्ट्रप्रेमी स्वयं कुछ अनुचित करते दिखाई नहीं देते हैं। वे देखने में आदर्श के प्रतीक से लगते हैं। वस्तुतः इनके अपने कार्यकर्त्ता होते हैं जोकि कुत्तों की तरह इनके टुकड़ों पर पलते हैं और अपने आका के इशारे पर कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। आर्थिक विषमता से ग्रस्त ये प्रायः निम्न-वर्ग अथवा निम्न-मध्यवर्ग के लोग होते हैं जोकि कोई भी घिनौना कार्य करने के लिए अभिशप्त-से होते हैं। कौल जी ने इन वर्गों के निस्सहाय, क्षयी एवं शून्य प्रत्ययों को प्रामाणिक अनुभव के निकष पर कसकर अपनी

कई कहानियों में प्रस्तुत किया है। 'यह साहब, वह साहब'[१] कहानी में जिन दो राजनीतिज्ञों को प्रस्तुत किया गया है, वे एक-दूसरे के विरोधी दिखाई देते हैं। इनमें से एक महाशय सत्तारूढ़ पार्टी के मन्त्री हैं तो दूसरे सज्जन सत्तारहित पार्टी के नेता। उनकी बातों से पता चल जाता है कि वे आम जनता को बहकाते हैं। वास्तव में वे दोनों एक हैं। उनके ही संकेतों पर दो विरोधी दलों के कार्यकर्त्ता आपस में लड़ते हैं जिनमें से कई जख्मी हो जाते हैं और दूसरे कई पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाते हैं। कहानी का एक स्थल इस प्रकार है, "सहसा दोनों को बाहर से आता कोई शोर सुनाई दिया। शोर का कारण किसी की समझ में नहीं आया। वे हैरानी से एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

शोर बढ़ता ही गया। दोनों परेशान हो गये। पाइप वाले साहब ने नौकर को बुलाकर उसे शोर का कारण मालूम करने के लिये बाहर भेजा।

नौकर दस-पन्द्रह मिनट के बाद कारण मालूम करके लौटा—जनाब, इधर से आपके समर्थकों का जलूस निकल रहा था। उसने अपने मालिक से कहा—वे लोग नारे लगाकर आपको जिन्दाबाद बोल रहे थे। ज्योंही वे चौक में पहुँचे उन्होंने दूसरे रास्ते से इनके समर्थकों का जलूस आता देखा। नौकर ने सिगरेट वाले साहब की ओर इशारा किया।

—फिर क्या हुआ ? सिगरेट वाले साहब ने पूछा।

—फिर क्या होना था, साहब चौक में पहुँच कर दोनों जलूस रुके। दोनों ओर से जोर-जोर से नारे लगाये जाने लगे।

---

१. दे० सारिका—अक्तूबर, १९७४ ; पृ० ७६।

ज़िन्दाबाद और मुर्दाबाद होने लगी। फिर एक-दूसरे पर झपट पड़े। पत्थर और खाली बोतलें बरसने लगीं। सुना इकत्तीस व्यक्ति घायल हो गये जिनमें ग्यारह की हालत बहुत खराब बताई जाती है।"[१]

कहानीकार जहाँ एक ओर समसामयिक हैं, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने आधुनिकता से उत्पन्न स्थितियों को चुनौती के रूप में स्वीकारा है, उनसे मुँह मोड़ा नहीं है। आधुनिक जीवन ने हमें जो वरदान प्रदान किए हैं उनमें एक यह है कि आजकल हम जिन चेहरों से साक्षात्कार करते हैं, वे सभी मुखौटे हैं। असली चेहरा न जाने विस्मृति के गर्त में कहाँ डूब कर मर चुका है। कहानीकार ने "**नायक**" नामक कहानी के माध्यम से आवरण और मुखौटों के नीचे छिपे समय और परिवेश के नग्न यथार्थ को समझने की कोशिश की है। कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी के प्रोफेसर की वास्तविकता को इतना बेनकाब कर दिया कि अगर कहीं-कहीं सच्चाई और असलियत पर हल्का झीना-सा पर्दा डाला भी गया है तो इससे वस्तुस्थिति और भी नग्न हो जाती है। प्रस्तुत कहानी का प्रधान पात्र (प्रोफेसर) जिस प्रकार अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में निस्संकोच मानवीय दुर्बलताओं से परिचित कराता है उससे इसका सृजन व्यंग्यात्मक स्तर पर उठता है। वह नाटक देखने के लिए थियेटर में कुर्सी पर बैठा हुआ है। उसकी अगली पंक्ति की बिल्कुल पास वाली कुर्सी पर उसके कालेज का चपरासी बैठा हुआ है। प्रोफेसर यह सहन करने को तैयार नहीं कि उसका चपरासी भी उसके संग नाटक देखने का आनन्द उठाये। उसके ही शब्दों में, "यदि वहाँ मिनिस्टर या डायरेक्टर का चपरासी

१. "यह साहब वह साहब"—दे०सारिका, अक्तूबर ; ७४ ; पृ०७९।

होता तो कोई बात नहीं थी। मैं अनुरोध करके उसे अपनी बगल वाली सीट पर बिठाता। शायद उसे सिगरेट भी पेश करता। मगर वह मेरा अपना चपरासी था।"[१] लगता है कि कहानीकार इन मुखौटों को बेनकाब करके असली चेहरे को तलाशने के लिए छटपटाते हैं।

कौल जी की कई कहानियों में निम्न-मध्यवर्ग की पस्ती, आर्थिक संकट, अन्धविश्वास, आडम्बरपूर्ण जीवन, तनाव-दुराव की स्थितियाँ, अस्तित्व का संकट तथा ऐसी ही दूसरी बातों पर प्रकाश डाला गया है। अन्य कहानियों के अतिरिक्त कौल महोदय की जो कहानियाँ पाठकों एवं समीक्षकों का ध्यान आकर्षित करती हैं, उनमें से कुछ प्रमुख कहानियाँ ये हैं— 'टोकरी भर धूप', 'भय', 'एक नग्न कथा', 'विश्वास', 'दाँव' आदि।

श्री हरिकृष्ण कौल की कहानियों का अध्ययन करके उनके रूपबन्ध की सामान्य प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का सामान्य परिचय प्राप्त हो जाता है। यों उनकी रचनाओं को 'शिल्प' तथा 'विषय' जैसे अवयवों में काटकर उनका विवेचन करना ठीक नहीं दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि उनकी रचनाओं में वस्तु तथा शिल्प की बारीकियाँ एक दूसरे को इस सीमा तक भेदती-काटती हैं कि उन्हें अलग-अलग करके देखना उचित नहीं दिखाई देता है।" फिर उन्हें 'कहानी' लिखनी होती है, नई संवेदना की कहानी। उनकी कहानी की स्थिति ही सम्भवतः यह स्वयं निर्णय करती है कि संवेदना को सम्प्रेषित करने के लिए

---

१. इस हमाम में : हरिकृष्ण कौल ; पृ० ८१।

उसे कौन-सा शिल्प अपनाना है। कहने का आशय यह है कि कौल जी का आरोपित शिल्प के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है। हम कह सकते हैं कि उन्हें पुराने आरोपित वादों से मुक्त होने की छटपटाहट है। वे भावुक कम किन्तु संवेदनशील अधिक दिखाई देते हैं। अपनी रचनाओं में लेखक ने तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाया है। प्रामाणिक अनुभूति के निकष पर कस कर ही वे अपनी संवेदना को कहानी के माध्यम से वाणी देने की कोशिश करते हैं।

कौल जी की कहानियों में कथानक कम अपितु कथ्य अधिक है। उनकी कहानी जिस बिन्दु से शुरू होती है, प्रायः उसी पर समाप्त भी हो जाती है। उनकी कहानी का फलक प्रायः सपाट तथा सीधा नज़र आता है। वह आकस्मिक उतार-चढ़ाव, औत्सुक्य तत्त्व आदि से भी मुक्त नज़र आती दिखाई देती है। कहानीकार ने अपनी रचनाओं में युगीन संकेतों एवं प्रतीकों का यत्र तत्र प्रयोग किया है, जिससे कहानियों की संवेदना में सघनता आ गई है। मगर ये संकेत तथा प्रतीक इतने सूक्ष्म होते हैं कि सामान्य बुद्धि इन्हें संकेत तथा प्रतीक मानने को तैयार होती नहीं दिखाई देती है। इस संदर्भ में हम कहानीकार की 'भ्रातृघाती'[1] नामक कहानी को देख सकते हैं।

कौल जी की कहानियों के पात्र प्रायः सामान्य कोटि के ही व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं। वे किसी धीरोदात्त पात्र की तरह कोई क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की क्षमता नहीं रखते हैं। वे जीवन झेलते नजर आते हैं। उनके सामने प्रश्न हैं, समस्याएं हैं किन्तु कोई दैवी एवं आदर्श समाधान अथवा उत्तर नहीं है।

---

१. नीलजा—४, १९७८-७९ ; पृ० ६०।

कौल की लेखनी उनके पात्रों के वश में है। अतः वे पात्रों को अपने सही रूप में प्रस्तुत करते हैं, उनको गढ़ते नहीं दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों के संवाद उनके पात्रों के अपने हैं, अतः वे सच्चाई तथा असलियत के नमूने हैं। इनमें जहाँ संक्षिप्तता है, सादगी है, वहां कहीं-कहीं युगीन ऊलजलूलपन (adsurdity) भी है। कहानीकार की कृतियों का वातावरण प्रतीकात्मक होता है। यूँ उन्हें किसी विशिष्ट शैली के प्रति आग्रह नहीं है। समय तथा स्थिति के अनुसार उनकी शैली परिवर्तित होती रहती है। उनकी कहानी के सभी तत्त्वों में एक अन्विति होती है और इस प्रकार रचना के रागधर्म को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

कौल जी के कहानी-साहित्य की कुछ सीमाएं हैं। वे प्रायः जिस कश्मीरी परिवेश की कहानियाँ प्रस्तुत करते हैं उनमें एक विशेष प्रकार का आंचलिक रंग होता है। इस आंचलिक परिवेश को हमारे दृष्टिकोण से कश्मीरी भाषा में ही सफलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। कहानी की भाषा केवल एक साहित्यिक संवाद ही नहीं है वह एक सामान्य संवाद भी है, किसी अंचल-विशेष की भाषा भी है। चूँकि भाषा तथा संस्कृति का आपस में चोली-दामन का सम्बन्ध होता है, अतः किसी परिवेश की संस्कृति को जानने के लिए उसकी भाषा का सहारा लेना अवश्यम्भावी है। कौल महोदय कश्मीरी हैं। उनकी सूझ-बूझ तथा संवेदना में तभी स्वाभाविकता तथा अधिकार आता है जबकि वे कश्मीरी में कहानी सृजन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहले कश्मीरी में लिखते हैं और फिर उसको हिन्दी में रूपान्तरित करते हैं। अनूदित रचना को मूल रचना नहीं, दूसरे

दर्जे (Second hand) की कृति मान सकते हैं। उनकी कई रचनाओं में व्यष्टि तथा समष्टि दोनों का सामंजस्य तो है किन्तु व्यष्टि के अन्तस में डूबकर लेखक ने उसको हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया है। इन इनी-गिनी सीमाओं को छोड़कर श्री कौल का कहानी-साहित्य सशक्त माना जा सकता है। वे कश्मीर के एकमात्र हिन्दी के कहानीकार हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर कहानीकार के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी है। हिन्दी जगत् को उनसे बहुत सी आशाएं संलग्न हैं तथा उनका भविष्य उज्ज्वल है।

# शॉपिंग

दुकान से निकल कर दोनों देर तक फुटपाथ पर चुपचाप चलते रहे। जब चुप्पी भूषण के लिए असह्य हो उठी तो उसने कहा—"मेरे खयाल में तुमने गलती की। काला कार्डिगन अच्छा था और·····और ज्यादा मंहगा भी नहीं था····

कान्ता ने जलकर, किसी अभियोग का उत्तर देने के स्वर में कहा—"पूरे सौ बता रहा था।"

"अस्सी-नब्बे में दे ही देता।"

पास ही एक आदमी कंघे और हेयर-ब्रश बेच रहा था। कांता ने हलके पारदर्शी गुलाबी रंग का एक ब्रश उठा लिया और उसे उलट-पुलट कर देखने लगी। अपनी बात का उत्तर न पाकर भूषण भीतर उपेक्षित और अपमानित अनुभव कर रहा था। अब जैसे उसे कुछ करने का, कर दिखाने का अवसर मिल गया। उसने हेयर ब्रश की कीमत पूछी और जेब से बटवा निकाला। लेकिन कान्ता ने तभी ब्रश वापस रखा और आगे बढ़ गई।

भूषण ने सिग्रेट सुलगाकर एक लम्बा कश लिया। हर ओर दुकानें ही दुकानें थीं। बड़ी दुकानें, छोटी दुकानें, मामूली दुकानें। बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों के पूरे ग्राउंड-फ्लोरों में फैली दुकानें,

संकरी कोठरियों में सिमटी दुकानें, शो केसों में घुटती दुकानें, खौंचों में भटकती दुकानें। टी० वी०, टेप रिकार्डर-ट्राँजिस्टर, शाल-साड़ियाँ, जूते-सैंडल, सूटिंग-शर्टिंग, बैग-अटैची, ताश, नेलकटर, चश्मे-पेन, फारेन सेंट, सेफ्टी-रेजर, कॉन्डोम, शीशे के एश ट्रे, खिलौने, नायलन के मौजे-फीते, मूंगफली, तिलपट्टी, रेवड़ियाँ, चूड़ा-चने, केले-अमरूद।·····कदम-कदम पर दुकानें और दुकानदार। दुकानदारों से अधिक खरीदार। हर माल के आगे भीड़। ग्राहकों की छीना-झपटी। डाल से सद्यः तोड़े गये बहुत मंहगे अमरूदों के लिए भी, कम महंगे साधारण अमरूदों के लिए भी, और बहुत सस्ते सड़े-गले अमरूदों के लिए भी। दुकानदारों में मर्दों के साथ औरतें। खरीदारों में मर्दों से ज्यादा औरतें। सड़क की दोनों ओर फुटपाथ से लगी मोटर गाड़ियों की दो कतारें। इन कतारों के बीच, और इनसे परे पैदल चलने वालों का हुजूम। हर तीसरी-चौथी दुकान से लटकते बैनर और किवाड़ों के शीशों से चिपके लेबल और स्टिकर जिन पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा है 'सेल,' 'सेल'।

"तुमने पैसे क्यों दिये?" भूषण ने रुष्ट होकर कहा।

"क्या वह लिफाफे मुफ्त बाँट रहा था?" कान्ता ने भोली बनकर पूछा।

"पैसे मैं देता।"

"मैंने भी तुम्हारे ही पैसे दिये। अपने बाप भाई के नहीं।"

भूषण को इस बात का सहसा कोई जवाब नहीं सूझा।

"लो मूंगफली खालो" कान्ता ने लिफाफा उसकी ओर बढ़ाया।

"नहीं, मैं सिग्रेट पी रहा हूँ।"

कान्ता कुछ कदम चलकर एक दुकान के सामने रुक गई। दुकान में साड़ियाँ ही साड़ियाँ जाल की तरह लटक रही थीं और मालिक मुसकराकर हर गुज़रने वाले को भीतर आने का निमन्त्रण दे रहा था। उसका अभिवादन स्वीकार कर भूषण दुकान के भीतर आ गया। लेकिन कान्ता बाहर से ही साड़ियों पर लगे प्राइस-टैग देखकर आगे बढ़ गई।

"आखिर कुछ लेना भी है या नहीं?" खिसियाकर दुकान से बाहर आने पर भूषण ने पूछा।

"पहले तुम सूट और शर्ट के लिए कपड़ा खरीदो।"

"सो तो मैं खरीदूँगा ही। तुम कोई साड़ी पसन्द कर लो।"

"मुझे कोई साड़ी पसन्द नहीं है।"

"क्या कहा?" भूषण ने सिग्रेट का अधजला टुकड़ा फेंक कर कहा, "इतने बड़े शहर में इतना बड़ा मार्केट। इतनी सारी दुकानों में इतनी सारी साड़ियां और तुम्हें कोई साड़ी पसन्द ही नहीं है।"

"इस मार्केट के बाहर और इस दिन के बाद भी हमें जिन्दा रहना है।"

"उसके लिए तुम्हारे बाप से पैसे लेंगे।"

"वह कहाँ से देगा। उसके पास पैसे होते तो····"

"तो वह अपनी बेटी की शादी किसी सेठ-साहूकार से करता।"

"तुम लड़ रहे हो!"

"तुम्हें साड़ी खरीदनी है या नहीं?"

"पहले तुम सूट खरीदो।"

दाहिनी ओर एक गली थी। भूषण अन्दर चला गया। कांता एक बिन्दी-सिंदूर वाले से कुछ मोल-तोल कर रही थी। भूषण कहां गया इस ओर उसका ध्यान नहीं गया और जब ध्यान गया तो अधिक विचलित भी नहीं हुई। पर भूषण झल्ला रहा था कि कान्ता उसके साथ गली में क्यों नहीं चली आई। इन गलियों में छोटी दुकानों में निश्चय ही मेन मार्केट से अच्छी और सस्ती चीजें मिल सकतीं हैं—'दि बेस्ट एण्ड दि चीपेस्ट'। लेकिन यह क्या ! इस गली में लगभग सारी दुकानें सोने-चाँदी की हैं। सोने के हार कंगन, झुमके, चांदी की तश्तरियां, टी-सेट। वह उल्टे पाँव गली से बाहर आ गया।

"कहाँ गये थे ?" कान्ता इस समय थोड़ी घबराई हुई थी।

"अन्दर गली में सिग्रेट लेने गया था।"

"बिना हद के सिग्रेट पीने लगे हो।"उसने होंठ बिचका-कर कहा और फिर जाने धीरे-धीरे क्या बड़बड़ाती रही।

भूषण ने यह बड़-बड़ सुनी भी और नहीं भी सुनी। समझी भी और नहीं भी समझी। उसकी आँखों में अभी तक सोने के आभूषणों और चांदी के सामान की चौंध बसी थी। चौंध शायद आभूषणों और सामान से अधिक उनकी सजावट में थी। सचमुच इस महानगर में हर आदमी अपने सामान को सजाना जानता है। साना चाँदी हो, चाहे कोई मामूली चीज। सामने फुटपाथ पर चने बेचने वाले ने चने के ढेर के ऊपर गुलाब के चार-पाँच फूल सजाए थे। इस मार्केट की छोर पर जो दूसरी सड़क, दूसरा मार्केट शुरू होता है, वहाँ एक दुकान में मोटरसाइकल और स्कूटर सजे थे। और उसकी बगल वाली दुकान में कूड़े-कचरे से बीने गये कागज, फटे मैले खाली पैकेट, पॉलीथीन के गन्दे थैले, लाकरों और सेफों में रखे नोटों के बंडलों की तरह करीने से

सजाए गए थे। वास्तव में कोई भी चीज बेकार, रद्दी या गन्दी नहीं थी। हर चीज खूबसूरत अर्थात् बिकाऊ माल है। और हर माल के लिए सजावट जरूरी है।

कान्ता फिर कुछ कदम आगे निकल गई थी। उसकी दुबली देह और गोरी रंगत जामुनी साड़ी में और निखरती यदि उसने साड़ी बाँधने में जल्दबाजी नहीं की होती, थोड़ा समय और लगाया होता। जबकि शॉपिंग के लिए या वैसे ही आई हर औरत जानती थी कि देह के किस अंग, किस पक्ष को निखारने के लिए कौन सी पोशाक, किस तरह पहननी चाहिए।

कांता ने पीछे मुड़कर देखा। वह भूषण के लिए कुछ देर के लिए रुक गई और फिर उसे एक दुकान के भीतर ले गई। दुकान की तीनों दीवारों के साथ रैकों पर ऊपर छत तक मर्दाना सूटिंग के थान के थान सजे थे और सामने बर्फ सी उजली चद्दर बिछे तख्त पोशों पर पाँच आठ सेल्समेन, नहीं दुकान के हिस्सेदार ग्राहकों के स्वागत-सत्कार के लिए तत्पर बैठे थे। उनके पीछे ऊपर पिछली दीवार के ठीक बीच में दुकान के संस्थापक उनके दादा-परदादा की गेंदे की माला से सजी बड़े साइज की फोटो लटक रही थी और उसकी सौम्य आकृति और देवतुल्य मुसकराहट दुकान में हर ओर, हिस्सेदार पर, माल पर और माल खरीदने वालों पर अनुग्रह और अनुकम्पा बरसा रही थी।

"कोई अच्छी सी टेरीवूल सूटिंग दिखाइए।" कांता ने तख्त पोश पर बैठे एक आदमी से कहा। पीछे खड़ा नौकर रैकों पर लगे थान सामने लाकर रखने लगा, वह आदमी थान खोलकर दोनों को दिखाने लगा। सभी थान अच्छे थे। सभी का डिजायन और कपड़ा बढ़िया था। इतना बढ़िया कि यदि भूषण अपने बटवे की सारा पूँजी बदले में दे देता तो सूटलेंग्थ

का पलड़ा ही भारी रहता। तब उसे अपने पहने कपड़े उतार कर पलड़े में में रखने होते। सूट फिर भी भारी रहता। पलड़ों को बराबर करने के लिए उसे तब अपने अंग काटकर रखने होते, अपना कटा सर रखना होता और अन्त में अपना क्षत-विक्षत बेकार धड़। और ऊपर, पिछली दीवार के बीच में गेंदे की माला में सजी सौम्य आकृति अमृत छिड़काकर उसे फिर से जीवन दान नहीं देती। हाँ उसकी मुसकराहट इतना अभय-दान और त्राण अवश्य देती है कि उसे निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह कांता की गोरी और छरहरी देह रखकर पलड़ा तो बराबर कर सकता है····

"कोई भी पसन्द नहीं ?" कान्ता ने रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

"नहीं"। भूषण ने सहज भाव में कहा।

दुकानदार और उत्साह से उनके सामने नये-नये थान खोल कर दिखाने लगा। भूषण को लगा कि जितने अधिक थान उसके सामने खोले जायेंगे, उतना अधिक उसके लिए इनके बोझ के नीचे से उभरकर दुकान से बाहर निकलना मुश्किल हो जायगा। लेकिन अभी सिर्फ मुश्किल है, बाद में यह असम्भव हो जायगा। उसने सहसा अपने को अनिर्णय की स्थिति से मुक्त किया और सारा साहस बटोरकर एक झटके में दुकान से बाहर चला आया।

उसके पीछे दाँत पीसती कांता भी दुकान से बाहर आ गई। उसने पीछे से भूषण को धर दबोचा—"ऐसे क्यों निकले ?"

"और कैसे निकलता ?"

"कोई भी सूटिंग पसन्द नहीं आई ?"

"नहीं, सभी पसन्द आईं। इसीलिए तो बाहर निकला।"

"महंगी थी, इसीलिए ?"

"मैंने कीमत ही कहाँ पूछी थी।"

"आखिर किस पर खीज रहे हो ?" कान्ता ने उसकी बाँह पकड़कर पूछा।

भूषण ने हल्के से अपनी बाँह छुड़ा ली और बहुत ही संयत स्वर में कहा—"देखो, ये सारे कपड़े स्टैंडर्ड मिलों के थे और स्टैंडर्ड मिलों के कपड़ों की कीमत हर शहर में एक जैसी होती है। हम यही कपड़ा इसी कीमत पर अपने यहाँ भी खरीद सकते हैं। आजकल ट्राँसपोर्ट इतना विकसित है कि हर चीज हर जगह मिल सकती हैं—लगभग एक जैसी कीमत पर।"

"साड़ियाँ भी ?"

"हाँ, साड़ियाँ भी – लेकिन साड़ियों की बात जरा अलग है। जैसी वेरायटी यहाँ मिल सकती है उतनी अपने शहर में नहीं।"

"नहीं, यह बात नहीं है।"

"फिर क्या बात है ?" भूषण के स्वर का संयम टिकने वाला नहीं था। नहीं टिका।

"तुम दिखाना चाहते हो कि बिना चूँ-चाँ किये कितना भारी बोझ ढो रहे हो। मगर खुद अपनी ही सहनशीलता पर कुढ़ते हो।"

भूषण छटपटाया। कान्ता इण्टर होते हुए भी, या इण्टर ही होकर भी कुछ क्यों नहीं करती—यह बात उसने शायद ही कभी सोची हो। इस समय तो बिल्कुल ही नहीं सोची थी। उसने चाहा कि वह कड़क कर कांता को डाँट दे, या चीखकर उसके सामने अपनी सफाई पेश करे, या रोकर उससे इतनी

निष्ठुर न बनने की विनती करे। मगर वह चुप रहा। वह शायद जान गया था कि उसका कड़कना, चीखना या रोना बाजार के शोर और हंगामे में निरर्थक और बेतुका लगेगा।

वह और उसके पीछे-पीछे कांता, बीच में गज या इससे भी सैकड़ों गुना ज्यादा दूरी बनाये रखे, चुपचाप बस स्टाप की ओर सरकने लगे, जहाँ से बस उन्हें उस सम्बन्धी के घर तक ले जा सकती थी जहां दोनों पिछले तीन दिनों से अनचाहे मेहमान बनकर रह रहे थे।

# श्री छत्रपाल

श्री छत्रपाल जम्मू-व-कश्मीर की नई पीढ़ी के हिन्दी के कहानीकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपकी अभी तक अधिक कहानियाँ प्रकाश में नहीं आई हैं किन्तु उनकी गिनती चाहे कम ही क्यों न हो, सृजन के लिहाज से वे सशक्त हैं। छत्रपाल जी की कहानियों का स्वर प्रायः वैयक्तिक है। उनकी कहानियों में व्यक्ति की जीवन में असफलता, उसकी घुटन, एकाकीपन, अजनबीपन, निराशा, व्यथा, विसंगति तथा ऐसे ही दूसरे प्रत्ययों को बहुत ही बारीकियों के साथ प्रस्तुत किया गया है। लेखक की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि ने उनके कथन में अनुभूति की प्रामाणिकता ला दी है।

~~युवा लेखक छत्रपाल जी की कहीं भी प्रकाशित होने वाली प्रथम कहानी 'ललितादित्य के मार्तण्ड'~~ है। प्रस्तुत कहानी की मूल संवेदना यह है कि जब किसी ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की पुरानी दुनिया छिन्न-भिन्न हो जाती है तो ललितादित्य के मार्तण्ड मन्दिरों की तरह ही उसका आकस्मिक पतन हो जाता है। इन अवशेष मन्दिरों की तरह ही उसके लिए शेष रह जाता है, मान-प्रतिष्ठा का एक अदर्शनीय मलबे का ढेर। जब यह व्यक्ति आस-पास से कटकर अन्तर्मुखी हो जाता है तो उसमें और शून्य में भटकते प्रेत में कोई अन्तर नहीं रहता। कहानी-

कार ने प्रस्तुत कहानी के मुख्य पात्र का दुःख बहुत ही बारीकियों के साथ (संकेत, प्रतीक, पलैश-बैक आदि) मूर्त करने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत कहानी का एक स्थल इस प्रकार है··· 'भीतर कुछ अकुला रहा है···बाहर निकलने को छटपटा रहा है और निकलने का कोई रास्ता नहीं···मन की पैंतीस वर्ष की वृक्ष की डाल असमय ही तड़तड़ाकर टूटने को है और प्रबल झंझावात में सूखे पत्ते की तरह काँप रही है·· अस्थिरता ··अव्यवस्था ··किसीने मानो गहरी झील में पत्थर फेंक कर उसके शांत जल को मथ डाला हो··यथार्थ और कल्पना · आस-पास के वातावरण से कट जाना और मायावी मकड़जाले टूटने पर यथार्थ के प्रखर सूर्य की जलती धूप में जलना एक प्रताड़ना है।"[१] इस दर्द में इतनी सघनता है कि इसे हम लेखक का अपना व्यक्तिगत दर्द मानें तो कोई अत्युक्ति नहीं है। इसी प्रकार 'रोशनी से दूर' नामक कहानी में छत्रपाल जी ने बैसाखियों के सहारे जीवन व्यतीत करने वाले एक पंगु की भावनाओं का मार्मिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कहानी के मुख्य पात्र में एक ऐसा आंतरिक दुःख व्याप्त है जिसको वह प्रकट नहीं कर पाता, बल्कि उसकी लाचारी एवं बेचारगी से ही हमें अवगत कराया गया है। इसी प्रकार उनकी एक अन्य कहानी 'मुड़ती दिशाएं' उनकी कहानी-कला का परिचय देती है। कहानीकार ने कहीं-कहीं व्यष्टि के माध्यम से समष्टि के ऐसे सत्यों की ओर संकेत किया है जिनका परिप्रेक्ष्य बहुत ही व्यापक है।

कहानीकार की रचनाएं वैचारिक स्तर पर अधिक किन्तु सृजनात्मक स्तर पर कम चली हैं। इससे लेखक की टीका-

१. ललितादित्य के मार्तण्ड : छत्रपाल; दे० धर्मयुग, २० दिसम्बर, १९७०।

टिप्पणियों से कहानी बोझिल-सी प्रतीत होती है। छत्रपाल जी आधुनिक तो अवश्य हैं किन्तु उन्हें सम्भवतः सम-सामयिक नहीं माना जा सकता। जीवन के व्यापक संदर्भों को लेकर उनकी कोई कहानी हमें देखने को अभी तक नहीं मिल सकी है।

उनकी कहानी की वस्तुगत एवं शिल्पगत विशेषताएं एक दूसरे के भीतर इस सीमा तक घुल-मिल गई हैं कि उन्हें अवयवों में काटकर नहीं देखा जा सकता। उनकी कहानी में गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं को इस सीमा तक आत्मसात् किया गया है कि उनकी कहानी की समूची परिभाषा ही बदल गई है। लेखक की कहानी के सभी तत्वों में एकरसता है तथा एकान्वित प्रभाव की सृष्टि करने की क्षमता है।

युवा लेखक श्री छत्रपाल का कहानी साहित्य नवीन दिशा-संकेत करता है। अपनी सीमाओं के बावजूद लेखक का भविष्य उज्ज्वल है।

# ललितादित्य के मार्तण्ड

मैं अडोल बैठा रहता हूँ।

व्यस्त से वे भीतर आते हैं और सामान बरामदे में रखवा-कर सप्ताह भर के आए पत्रों को जल्दी-जल्दी पढ़ते हैं। प्रत्येक पत्र उनकी मुखाकृति पर अलग-अलग भाव प्रतिबिम्बित कर रहा है। रेखाएं बन-मिट रही हैं। एक पत्र में डूबते-उतराते चले गए हैं। अस्पष्ट-सा कुछ बुदबुदा कर उसे जेब में रख लेते हैं। आँटी और मैं उपेक्षित से उनके पीछे ड्राइंग रूम में आ जाते हैं। फिर बैठ जाते हैं थके-से। आँटी ठीक उनके सामने वाली कुर्सी पर टिकी हैं। मैं दरवाजे के पास दीवार का सहारा लिए खड़ा हूँ।

आरम्भ के दिनों में जब भी अंकल पास आते, तो आँटी अपनी उत्सुकता को दबा न पातीं। पूछती—हुआ कुछ फैसला? वे अपमानित-से नंगे फर्श पर रेंगती चींटी के पीछे अपनी नीली आँखें लगाकर हौले से गर्दन नकारात्मक ढंग से हिला देते। किन्तु अब वे कुछ पूछती नहीं। पांच वर्ष पर्याप्त नहीं होते। कई बार आधी उम्र चली जाती है मुकदमे-बाजी में, वे जान गयी हैं।

जैसे अन्धेरे में संकरी गली के अन्धे मोड़ पर कोई शोहदा किसी निरीह बाला को घेर ले और कुछ करे, इससे पहले ही गली के खम्भों पर टंगे बल्ब जगमगा उठें और लड़की के

अभिभावक भी सामने से आ जायें—कुछ ऐसी ही दशा तब अंकल की हो गई थी। आपत्ति की घुमावदार गली से भागने की कोई गुंजाइश नहीं रही। गली के हर एक सिरे पर कानून के संरक्षक विकराल अजगर की तरह मुंह खोले खड़े थे। लोग कहते हैं बहुत बड़ा केस था—लाखों का। कई फाइनेन्स कम्पनियाँ, मोटरगाड़ियों के दर्जनों परमिट, और न जाने क्या-क्या! इतना कुछ जाली हो सकता है, मेरा पंद्रह वर्षीय मस्तिष्क स्वीकारता नहीं, पर लोग कहते हैं, ऐसा हुआ है। कुछ-न-कुछ तो हुआ है, ऐसा मैं जानता हूँ, पर इसकी भयंकरता नहीं जान पाया।

अंकल जब मुझे गाँव से यहाँ ले आए, तो मेरा मन उमंगों से भरा था। शहर के ऐश्वर्य के मोहजाल ने मुझे जकड़ लिया था। कहाँ गाँव का खपरेल वाला स्कूल और कहाँ शहर का कॉन्वेंट। वहां का मास्टर साक्षात् यमदूत था, यहाँ की सिस्टर्स दूध धोयी संगमरमर की प्रतिमाएं। अंकल ने मुझे प्रवेश तो दिलवा दिया, लेकिन मुझे अन्य विद्यार्थियों के स्तर तक पहुँचने में जितना परिश्रम करना पड़ा, उतना शायद ही कभी जीवन में करना पड़े। पर शीघ्र ही आस-पास की परिस्थितियों का जायज़ा लेकर मैंने अपने आपको समेट-सा लिया। जैसे बजती सितार के थरथराते तारों पर कोई अपना कोमल हाथ रख दे। घर भर पर एक अभेद्य चुप्पी छायी रहती। तूफान आने से पहले की खामोशी। पर तूफान तो एक भयंकर गति से आकर चला गया था। और पीछे छोड़ गया था अदर्शनीय मलबे का एक बड़ा ढेर। मान-प्रतिष्ठा का मलबा, आनेवाली जिन्दगी का मलबा और इस अशोभनीय मलबे के मालिक थे अंकल। मलबे में रहते-रहते हम कब प्रेत बन गए, हमें याद नहीं।

तिल-तिल कर मरते किसी सर कुचले करैत की तरह मेरी उमंगें मेरे भीतर ही पूंछपटक-पटक कर दम तोड़ गयीं। अंकल ने मुझे अपना प्रतिरूप बना दिया। अक्सर वे रात को निश्चल-से बिस्तर पर लेटे छत को देखते रहते। उनकी आँखों में प्रयत्न करने पर भी मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। करवट बदलते समय जब वे हल्की सी कराह को दबाने का प्रयत्न करते, तो अपने बिस्तर पर लेटा मैं महसूस करता, मानो मेरे शरीर के अंग पथरा गये हैं। करवट लेने में अपने को असमर्थ पाता। हर करवट पर सैकड़ों प्रश्न तीक्ष्ण काँटों की तरह अंतस्तल को भेद जाते और मैं यही सोचता-सोचता सो जाता कि क्या समय फिर करवट बदलेगा।

प्रातः टाइपराटर की टिक-टिक मेरी नींद खोलती। अंकल टाइप कर रहे होते। मेरा मन उनकी सहायता करने को तरसता। चाहता कि वे कुछ देर सुस्ता लें और मैं उनकी अर्ज़ियाँ कर दूँ। जानता हूँ, वे आधी रात गए टाइप करते रहे होंगे। जब इस पर नींद न आयी होगी, तो छत पर घूमते रहे होंगे, अकेले। कहते हैं, आस-पास से कटकर जब आदमी अंतर्मुखी हो जाता है तो उसमें और शून्य में भटकते प्रेत में कोई अंतर नहीं रहता। तो क्या अंकल भी··मैं इसके आगे कुछ सोचना नहीं चाहता। मैंने अपने एक मित्र के पिता के आफिस में प्रति दिन एक घंटा लगाकर टाइप सीख ली है। झिझकते हुए एक दिन मैंने उनसे अर्ज़ियाँ टाइप करने को कहा। मेरे हृदय पर एक जबर्दस्त घूंसा पड़ा। अंकल ने बताया कि टाइपराइटर बेच दिया गया है, मेरी चार महीनों की स्कूल फीस की अदायगी के लिए। कितने दिनों तक मेरे आस-पास एक अदृश्य टाइपराइटर की टिक-टिक तैरती रही।

अंकल तौलिया उठाकर बाथरूम चले गए हैं और आंटी किचन में । दीवार से सटकर खड़े रहने से मेरी पीठ में ठंडक फैलती जा रही है । इस ठंडक का मैं गाँव में रहकर आदी हो गया हूँ, पर अंकल के चेहरे का ठंडापन मैं सह नहीं सकता । उनका चेहरा मुझे बर्फ का एक गोला नजर आता है, जैसा हम गाँव में बर्फ पड़ने पर बनाते थे । रुई-सी नर्म और धवल बर्फ का हम बच्चे मिलकर एक ढेर बना लेते और फिर अपने कौशलानुसार उस पर मुँह, नाक, आँखें खोदते । घंटों बाद जब उस हिम-मूर्ति के नैन-नक्श पिघल जाते, तो वह बर्फ का एक बेडौल ढेर नजर आने लगता ।

स्कूल में गणित की टीचर अक्सर कहती हैं – 'फर्ज किया एक्स इक्वल टू·····'

फर्ज करो, बर्फ के उस बुत की पिघली आँखें, नाक, कान बराबर हैं अंकल की खोई हुई मान-प्रतिष्ठा के, तो अंकल और बर्फ के उस ठंडे ढेर में क्या अन्तर है ?

× × × ×

मैं बाहर बरामदे में आ गया हूँ । बाथरूम से कपड़े पीटने की आवाज आ रही है । अंकल छोटे-मोटे कपड़े स्वयं ही धो लेते हैं । आंटी किचन में चाय बना रही हैं । आंच से उनका चेहरा अरुणिम हो उठा है । साड़ी का पल्लू खिसककर नीचे झूल रहा है । उनकी कमर का कुछ भाग साफ दिखाई दे रहा है, गोरा और माँसल । किन्तु अंकल उनकी अकलुषित देहयष्टि को पाँच सालों से निरंतर नजरअंदाज करते आ रहे हैं । शायद उन्हें इसके लिए फुर्सत ही नहीं मिलती । छी·····मैं भी क्या सोचने लगा हूँ !

अंकल के छोटे-छोटे काम करने को मैं लालायित रहता हूँ, पर उनके लिए पेंसिल तराशते समय जिस दिन मेरी उंगली ब्लेड से कट गई थी, तब से उन्होंने मुझे कोई काम नहीं सौंपा। अधिक हुआ, तो धोबी से उनके कपड़े ला दिए, अब मैं धोबी की दुकान पर जाने से कतराता हूँ। एक दिन स्कूल यूनीफार्म की नेकर इस्तरी करवाने गया, तो धोबी ने तुरंत इस्तरी करने से साफ इनकार कर दिया। कहा कि नेकर शाम तक ही मिलेगी। पहले यही आदमी मुझे आता देखकर अन्य कपड़े एक ओर फेंक देता और दुकान से बाहर आकर मुझसे कपड़े ले लेता था और उनपर झट से लोहा कर घर तक छोड़ भी जाता था। मैं अंकल का क्या लगता हूँ। अंकल की कितनी कारें हैं। ऐसे सवाल पूछ-पूछकर रास्ते में मेरा सिर खा जाता था। और मुस्तफा दर्जी भी ऐसे ही रंग बदल गया। ठीक ही तो है। बर्फ के पुतले के नैन-नक्श पिघल जाने पर बच्चे उसमें दिलचस्पी नहीं लेते।

× × × ×

कई बार अकेले बैठे मेरा भी सिर चकराने लगता। आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता और हाथ-पाँव ढीले पड़ जाते, पर मैंने किसी को बताया नहीं। मैं अंकल की चिन्ताएं बढ़ाना नहीं चाहता।

कुछ दिन हुए मेरी कापी से दो-तीन कागज निकल गए। मैं अंकल की निजी आलमारी से स्टिचिंग मशीन ढूंढ़ने आया। मुझसे दुगनी आलमारी, बेशुमार फाइलें, डिब्बे, किताबें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मेरी निगाह एक चमकदार जिल्दवाली नोटबुक पर पड़ी। जो कि फाइलों के अन्दर से झांक रही थी। मैंने खींचकर उसे बाहर निकाला। वह अंकल की व्यक्तिगत डायरी थी। मैं

पृष्ठ उलटने लगा। एक स्थान पर मेरी नजर गई। मैं पढ़ने लगा।

'भीतर कुछ अकुला रहा है·····बाहर निकलने को छटपटा रहा है और निकलने का कोई रास्ता नहीं·····मन की पैंतीस वर्षीय वृक्ष की डाल असमय ही तड़तड़ा कर टूटने को है और प्रबल झंझावात में सूखे पत्ते की तरह काँप रही है·· ···अस्थिरता·····अव्यवस्था·····किसी ने मानो गहरी झील में पत्थर फेंककर उसके शांत जल को मथ डाला हो····यथार्थ और कल्पना···आस-पास के वातावरण से कट जाना और मायावी कल्पना के मकड़जाले टूटने पर यथार्थ के प्रखर सूर्य की जलती धूप में जलना एक प्रताड़ना है·····जब पुरानी दुनिया छिन्न-भिन्न हो जाती है, तो अन्तर्मन के कुछ अदृश्य हाथ सामने टोह लगाए कटु सत्य के आक्टोपस के लिजलिजे बाजुओं से बचने के लिए फिर उसी दुनिया के फिसलन भरे कगारों की ओर अपनी कंकाल उंगलियाँ बढ़ाते हैं, तो पता चलता है कि हम कितनी बुरी तरह से उखड़ गए हैं!···· पिछली जिंदगी का आधार कितना गलत था·····वह एक मटमैला सपना था·····अब है जलती रेत ·····और मेरे पाँव नंगे हैं·····'

मैंने घबराकर पृष्ठ उलट दिया।

'·····कितनी भी गहरी साँस क्यों न लूँ, भीतर फंसा कुछ नहीं निकलता·· ··भीतर-ही-भीतर खटकता रहता है ·····मैं अधूरी कहानी हूँ, जिसे लिखना छोड़कर लेखक कहीं चला गया है·····यह कहानी लेखक की बाट जोह रही है ····वह लौटकर आएगा भी कि नहीं? अपनी पुरानी कलम से इस जर्जर पाँडुलिपि को पूरा कर कोई नाम, कोई

रूप देगा भी, यह ऐसे ही एक-एक पृष्ठ कर तेज हवा में खो जाएगी·····'

मैंने पुनः पन्ना पलटा। उस पृष्ठ पर एक रेखाचित्र था, जिसे देखकर मैं सिहर उठा। वृक्ष की एक मोटी डाल है। उससे एक फंदा लटक रहा है और फंदे में एक लाश झूल रही है·····गर्दन खिचकर लम्बी हो गई है। कपड़े ढीले-ढाले, बाल बिखरे हुए। मैंने नीचे का शीर्षक पढ़ा—आखिरी रास्ता ·····मेरे हाथ-पांव पस्त हो गए। आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। मैंने रोकने के लिए यत्न किये पर मेरे मुंह से बर-बस एक चीख निकल पड़ी और मैं गिर पड़ा। शायद मैं बेहोश हो गया था।

होश आया, तो बिस्तर पर पड़ा था। आँटी तथा अंकल घबराये-से मुझ पर झुके मेरे चेहरे पर पानी के छींटे दे रहे थे। कुछ देर पश्चात् डॉक्टर भी आ गया था। मुझे इंजेक्शन लगा-कर वह अंकल से बात करता हुआ बाहर बरामदे में चला गया था। और फिर काफी देर तक खुसुर-फुसुर होती रही थी। मैं केवल इतना ही सुन पाया—डॉक्टर कह रहा था, 'केस पुराना है।'

× × × ×

अंकल नहाकर बाथरूम से बाहर निकले हैं। कमर के गिर्द एक बड़ा तौलिया लिपटा हुआ है। उनके घुंघराले बाल माथे पर झूल रहे हैं और चेहरा बड़ा मासूम लग रहा है। मेरा जी कर रहा है, मैं उनके माथे का प्यार भरा चुंबन ले लूँ और उनके बालों में उंगलियां फेरूं। पर शायद ऐसा सम्भव नहीं। हाथ लगाना तो दूर, हमने आपस में बहुत कम बातें की हैं।

पाँच वर्षों में उनके साथ हुई मेरी बातों को समय में बाँधा जाय तो कठिनता से आठ-दस घंटे ही बनेंगे। पाँच वर्षों में दस घंटे। और वह भी हाँ-ना में। शुरू-शुरू में जब उन्होंने मुझे 'ऐडाप्ट' किया, तो कोई-न-कोई बात पूछते रहते थे, पर बाद में वह भी बंद हो गई। मैं हिम्मत करके कभी कुछ पूछ भी लेता तो वे इतना संक्षिप्त उत्तर देते कि मुझमें बात आगे बढ़ाने का हौसला नहीं रहता। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे मुझे चाहते नहीं। नये-से-नये कपड़े, खेलों का सामान कामिक्स और ढेरों-सी दूसरी चीज़ें ला देते हैं। प्रायः घुमाने ले जाते। कार की अगली सीट पर बैठे-बैठे मेरे मन में बीसियों प्रश्न उठते, पर जबान तक कोई न आता। वह मुझे हर माह कहीं-न-कहीं बाहर ले जाते—कभी गुलमर्ग तो कभी पहलगाम।

एक बार वे मुझे ललितादित्य के मार्तण्ड दिखाने ले गए। यह स्थान श्रीनगर से लगभग ४५ मील है। क्लास में फादर जोन्स ने सम्राट् ललितादित्य के विषय में हमें पढ़ाया है। वह आठवीं शताब्दी का कारकोटक वंश का एक शक्तिशाली सम्राट् था। उसका साम्राज्य विशाल था। अपने राज्यकाल में उसने बड़े-बड़े भव्य मंदिर निर्मित करवाए। मार्तण्ड—आकाश से बातें करते ऊंचे-ऊंचे भरकम, अपने गौरव के प्रतीक। किन्तु ये मार्तण्ड जिस वैभव से निर्मित हुए थे, ललितादित्य के जाते ही उतनी ही आकस्मिकता से उनका पतन हो गया। समय की कठोर शिला पर नाम अंकित करने की उस सम्राट् की इच्छा पूर्ण न हुई। अब रह गई थीं बड़ी-बड़ी दीवारें, बेडौल खण्डहर जिन पर लम्बी-लम्बी घास उग आई थी। शक्ति पर समय की विजय। अंकल ने मार्तण्डों के विषयमें और भी कई बातें बताईं। उनकी कार जब मुक़द्दमेबाजी की भेंट हो गई, तो हमारा

लम्बी सैर को जाना भी बन्द हो गया। अंकल चार गवाहों को लेकर देहली गये थे। और जब लौटे थे, तो कार नहीं थी। उस रोज आँटी बेहद खामोश रहीं। सुबह उठीं, तो उनकी आँखें सूजी हुई थीं और सुर्ख थीं।

कुछ दिन हुए सड़क के किनारे मैंने एक जादूगर को करतब दिखाते देखा। वह सामने रखे रंग-बिरंगे रूमाल, कागज और रिबन निगलता जा रहा था। भीड़ के बीचों-बीच खड़े मुझे अंकल की याद अचानक ही आ गई। और उनके साथ ही मुकद्दमेबाजी। और उसके साथ ही याद आये वे पंखे, रेडियो सेट, कैमरे, कारें, बाग और मकान, जिन्हें उस जादूगर की तरह मुकद्दमेबाजी ने निगल लिया था। गर्मियों में खाना खाते समय जब कोई मक्खी आकर थाली में बैठती, तो मैं झुंझलाकर छत की ओर देखता, जहां पंखा उतर जाने के कारण एक खुलापन आ गया था। कौर चबाते समय मैं ऐसा महसूस करता था, मानो मैं पंखे के पर का कोई टुकड़ा चबा रहा होऊं। बार-बार रुलाई आती अपनी असमर्थता पर। हमारे परिवार के मित्रों की भांति घर की चीजें भी एक-एक करके हमें छोड़े जा रही हैं।

अंकल नहा-धोकर तैयार हो गए हैं। आंटी उनके आगे चाय रखकर मुझे बुलाने आती हैं। मैं उनके पीछे-पीछे चलता भीतर आ जाता हूँ, खिंचा-खिंचा-सा। अंकल कुर्सी पर बैठे चाय के कप में चम्मच फिरा रहे हैं। मैं पास की कुर्सी पर बैठ जाता हूँ और आंटी सामने। तीनो मौन हैं। वे मुझे घूरकर देखते हैं और अपना कप मेरे आगे सरका देते हैं।

चाय पीकर हम बाहर आ गए हैं।

—बिस्तर और अटैची खोल दूं ? आंटी पूछती हैं।

—नहीं कल पठानकोट जाना है। वकील का खत आया है। अंकल चलते हुए कहते हैं। दरवाजे के पास पहुँचकर वे पीछे मुड़कर मुझे देखते हैं—सैर करने नहीं जाओगे ?

मैं ऊहापोह में पड़ गया हूँ। आजकल उनसे कतराता हूँ। उनके साथ चलूंगा तो वे कोई बात नहीं करेंगे। ऐसे चलते रहेंगे, मानो मेरा अस्तित्व ही न हो। मुझे असमंजस में पड़ा देखकर आँटी अनचाही बौछार से बचा लेती हैं—मन नहीं, तो मत जाओ। अंकल बिना कुछ कहे चले जाते हैं। मैं एक लम्बी साँस लेता हूँ मानो मैं बिल में घुसा चूहा होऊं जो प्रतीक्षा कर रहा हो कि कब बिल्ली ओझल हो और वह बाहर आकर आराम से सांस ले।

शाम के सात बज चुके हैं। हवा बोझिल और ठंडी है। चिनारों के वृक्ष अंधेरे की मटमैली-सी चादर ओढ़े प्रेतों की तरह दम साधे मौन खड़े हैं। बरामदे की बत्ती बुझी हुई है। आंटी खाना तैयार कर रही हैं। दिन भर वे अपने को किसी-न-किसी काम में उलझाये रखती हैं। जब कोई काम शेष नहीं रहता तो माला लेकर बैठ जाती हैं। रसोई के एक कोने में मोटे पायों वाली बड़ी मेज पड़ी है, जिस पर नाना प्रकार के बर्तन, डिब्बे और एक स्टोव पड़ा है। आँटी की कलाइयाँ सूनी हैं और वे पतीली में पड़ा कुछ कलछी से हिला रही हैं। मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ा हो जाता हूँ। रसोई की दीवारें कुछ धुंधला गई हैं, शायद पाँच बरसों से सफेदी न होने के कारण। पच्चीस वॉट का बल्ब अंधेरे को पूर्णतया भगाने में असमर्थ है। समूचे वातावरण में एक पीलापन तैर रहा है। तिस पर स्टोव की समरस आवाज। माहौल रहस्यपूर्ण है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे मेरी चेतना कदम-कदम पर इस धुँधलके में विलीन

होती जा रही है। मैं घबराकर आंटी की पीठ को पहली तीन उंगलियों से छू लेता हूँ। वे चौंककर पीछे देखती हैं और मुझे पाकर आश्वस्त-सी पुनः कलछी चलाने लगती हैं। मैं काँप रहा हूँ। आंखों के आगे धुंध कुछ बढ़ गई है और सिर·····मैं सहारे के लिए आंटी की ओर लपकता हूँ। वे पुनः चौंककर मुझे घूरती हैं, पर मेरी मुंदती आंखें देखकर मुझे अपनी छाती से लगाकर भींच लेती हैं और बैठ जाती हैं।

—बिरजू, हम तुम्हारा ठीक से इलाज भी न करवा सके! उनका स्वर भीग आया है। वे पीने को मुझे पानी देती हैं। धुंध छंटने लगी है और मुझे उनके देह की गरमाई महसूस हो रही है। मेरी आँखें अब भी बन्द हैं और एक अन्य प्रकार की अवचेतना मुझपर हावी होती जा रही है। वे मुझे सहारा देकर भीतर पलंग पर लिटा गई हैं। कम्बल भी ओढ़ा गई हैं।

अंकल रात दस बजे लौटते हैं थके-थके-से। जानता हूँ, वे तीन-तीन मील का फासला तय कर के आये हैं। मैं जाग रहा हूँ। वे मेरे पास आकर रुक जाते हैं। उन्हें जाने कैसे पता चल गया है।

—आज फिर ····उनकी आवाज खिड़की के शीशे की तरह ठंडी है। मेरा माथा छूकर कहते हैं—टेम्प्रेचर तो नहीं है?

कपड़े बदल कर वे फिर मेरे पास आकर बैठ जाते हैं। एक टक मेरी ओर देख रहे हैं। मैं उनकी दृष्टि का ताब नहीं ला सकता हूँ। आँटी उनसे पूछती हैं—खाना·····? वे एक पल को कुछ सोचते हैं, फिर मेरी ओर देखकर उत्तर देते हैं—कुछ भूख नहीं। मुझे फिर रुलाई आ रही है। क्यों भूख नहीं है? कहां से खाकर आ रहे हैं? या मेरे कारण आपको कुछ खाने को

जी नहीं कर रहा है ? होता वही है, जो पहले होता आया है। मेरे ये सवाल मेरे अंतर में उमड़-उमड़ कर गूंजते हैं, परन्तु जबान पर नहीं आते। क्या आंटी खा सकेंगी ?

—सुबह मेरे साथ चलना। डाक्टर परकिस को दिखायेंगे। वे मुझसे कहते हैं।

—सुबह मुझे पांच बजे उठा देना। आंटी से कहकर वे सोने चले गए हैं।

प्रातः मेरी आँख खुलती है। अंकल अटैची में फाइलें रख रहे हैं। आंटी नाश्ता लिए पास ही बैठी हैं। मुझे उठा देखकर वे मेरे पास आ जाती हैं।

—जल्दी से तैयार हो जाओ, वे जाने वाले हैं। तुम्हें डाक्टर को दिखाकर ताँगे पर बिठा देंगे। मैं बीस मिनट में तैयार हो जाता हूँ। आज रविवार है, मुझे छुट्टी है। अंकल ताँगेवाले को बुलाने गए हैं।

—डाक्टर को सब कुछ बताना, झिझकना नहीं। आँटी मुझे समझाती हैं। घंटियों की टुनटुनाहट सुनते ही वे अटैची उठाकर दरवाजे के पास रख जाती हैं। मैं भी दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया हूँ। अंकल आकर बिस्तर और अटैची ताँगे पर लदवाते हैं।

—कितने दिन लगेंगे ? आंटी उनसे पूछती हैं।

—पठानकोट वाले केस का कल फैसला है। दो-तीन दिन लग ही जाएंगे। वे बोलते हैं। खर्च के लिए कुछ नोट आंटी को थमाकर मेरे पास पिछली सीट पर बैठ जाते हैं।

ताँगा चल पड़ा है। में आंटी की ओर देखता हूँ। वे दरवाजे के पास खड़ी झांककर हमें देख रही हैं। वे बार-बार

उंगली से आँखें रगड़ रही हैं। जाने क्यों ? शायद आंख में कुछ पड़ गया है।

तांगा गली को छोड़ खुली सड़क पर आ गया है। अभी तक दुकानें नहीं खुलीं। इक्का-दुक्का तांगा रेंगता आ रहा है। दिन पूरी तरह नहीं निकला है। आकाश बादलों से भरा है। विशेष ठंड नहीं।

—ठंड तो नहीं लग रही ? अंकल मेरी कमर में हाथ डाल-कर पूछते हैं।

—नहीं·····मैं हौले से कहता हूँ। उनका हाथ रखना मुझे भला लग रहा है।

ताँगा चलते-चलते बस-स्टैंड पर आ पहुँचता है। वेटिंग-रूम में सामान रखकर अंकल और मैं सामने की एक इमारत में दाखिल होते हैं। बोर्ड लगा है—डाक्टर परकिस··फिजिशियन। मरीजों की एक लम्बी कतार आफिस के बाहर बेंचों पर बैठी है। इतने सारे बीमार लोग न जाने इतनी सुबह किस प्रकार आ जाते हैं। अंकल चपरासी के हाथ अपना विजिटिंग कार्ड अन्दर भिजवाते हैं। दूसरे ही पल भीतर से बुलावा आ जाता है।

अंकल डाक्टर से हाथ मिलाते हैं।

—कहिए मिस्टर राज, आज कैसे तकलीफ की ? मुझे फोन कर दिया होता। मुझे डाक्टर के व्यवहार से बड़ा सुख-सा मिल रहा है। शहर के तमाम बड़े-बड़े अफसर और व्यापारी अंकल से परिचित हैं·····थे। कुछ अब भी हैं। शायद डा० परकिस उनमें से एक हैं। अरे ! ये तो वही हैं। गंजे और लाल कानों वाले, जो अक्सर हमारे घर आते थे।

—ये ठीक नहीं रहता। अंकल मेरी ओर इशारा कर डाक्टर से कहते हैं।

—हाय·····बिरजू ? उन्हें मेरा घरेलू नाम याद है। मैं हल्के-से मुस्करा देता हूँ। मेरी झिझक खत्म हो गई है। मैं उन्हें अपनी बीमारी के विषय में विस्तारपूर्वक बताता हूँ। चेकअप के पश्चात् वे प्रेसक्रिप्शन लिख देते हैं। चलते समय अंकल उन्हें फीस देने लगते हैं, तो वे लेते नहीं। मेरा कंधा थपथपाकर स्नेह से कहते हैं—देखो, जल्दी से अच्छे हो जाना·····हाँ!

बसस्टैंड पर चहल-पहल कुछ बढ़ गई है। कुली बस की छतों पर सामान लाद रहे हैं। अंकल अपना सामान रखवाते हैं—बिस्तर और अटैची। हल्की बूंदा-बांदी होने लगी है। कंडक्टर सवारियों को बस में बैठने के लिए कह रहा है। अंकल एक ताँगेवाले को इशारा करते हैं—अब तुम जाओ। मैं ताँगे-वाले को कह दूंगा। तुम्हें घर तक छोड़ आए। फिर पर्स से दस-दस के तीन नोट मुझे थमा देते हैं। शायद दवा खरीदने के लिए। अपनी आँटी का खयाल रखना·····और अपना भी।

—जी।

—अच्छा·····वे बस की ओर मुड़ते हैं।

मैं ताँगे पर बैठ गया हूँ।

बस ढेर-सा धुआँ छोड़कर सरकने लगती है। अंकल हाथ हिलाते हैं, प्रत्युत्तर में मैं भी।

अंकल ललितादित्य के मार्तण्डों की तरह अपने जर्जर कंधों पर उज्ज्वल अतीत का बोझ उठाये भविष्य का फैसला सुनने आ रहे हैं।

अंकल और ललितादित्य·····! उनका वर्तमान और मार्तण्डों के भग्नावशेष·····!

आँटी और मैं मार्तण्डों के नीरस खण्डहरों में अभिशप्त प्रेत·····

टप-टप, टप-टप·····!

---

# डॉ० अयूब 'प्रेमी'

डॉ० अयूब 'प्रेमी' संक्रमण-काल की पीढ़ी के कहानीकार हैं। युगीन तथा पारिवारिक परिस्थितियों के अनुसार आपके जीवन की शुरुआत आदर्श, मोह तथा ऐसी ही दूसरी स्थितियों से हुई, किन्तु कालान्तर में उनकी परिणति अनादर्श, मोहभंग आदि में देखी जा सकती है। चेतना के जाग्रत होने पर लेखक ने अन्य साहित्यकारों की तरह अपने देश को तथा अपने चारों ओर के परिवेश को सच्ची तथा यथार्थपरक दृष्टि से देखने की कोशिश की है। आपने अपने स्वतन्त्र देश में प्रायः प्रत्येक बात का अनुभव किया है—महंगाई, भुखमरी, रिश्वत, काला धन, भाई-भतीजावाद, वर्गसंघर्ष, मध्यवर्ग की बिगड़ती स्थिति, मूल्यों का संकट तथा इनका अवमूल्यन, बनते, टूटते-बिगड़ते रिश्ते आदि। अपने अध्ययन काल में 'प्रेमी' जी ने आदर्शोन्मुख कहानियों तथा प्रसाद की काल्पनिक तथा भावमूलक रचनाओं का अध्ययन भली-भाँति किया था। वे जैनेन्द्र के मनोविज्ञान तथा जीवन-दर्शन, 'अज्ञेय' के शुद्ध मनोविज्ञान, यशपाल तथा रांगेय राघव की प्रगतिशील चेतना से पहले ही साक्षात्कार कर चुके थे। कहानियाँ लिखने से पूर्व उन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर नई चेतना के प्रारम्भिक कलाकारों का भी अध्ययन किया था। वस्तुतः उपरोक्त पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में अयूब 'प्रेमी' ने हिन्दी कहानी जगत् में अपने कदम रखे हैं।

'प्रेमी' जी की कहानियों का संदर्भ प्रमुखतः मध्यवर्ग और कहीं-कहीं निम्नमध्यवर्ग। देश की आज़ादी के बाद मध्यवर्ग को ही एक जबर्दस्त संस्कारगत धक्का पहुँचा है। बदलती परिस्थितियों में यह वर्ग उच्च तथा निम्नवर्गों के आपसी संघर्ष में बेरहमी से पिसता रहा है। मध्यवर्ग ने इस सारे परिवर्तन के अनुभव को तीव्रता से अनुभव किया। इसी ने अपने को विस्थापित, असहाय और विद्रोही पाया और इसी ने मूल्यों की जहरीली तासीर को अनुभव किया। 'प्रेमी' जी प्रायः मध्यवर्ग से ही सम्बन्धित हैं, अतः इस समाज की क्षयी तथा शून्य आवाज को आपने ईमानदारी तथा प्रामाणिकता के निकष पर कसकर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह आवाज 'दुहरी टूटन', 'कहो कैसी तबीयत है', 'एक नाम बुझी मुस्कान' तथा ऐसी ही दूसरी रचनाओं में सहज ही पाई जा सकती है।

लेखक की कहानी वस्तुतः टूटते-जुड़ते सम्बन्धों की कहानी है। उन्होंने इन सम्बन्धों के माध्यम से भारतीय परिवेश में प्रायः नगर के मध्यवर्ग तथा निम्न-मध्यवर्ग के जीवन-दर्शन का चित्रण किया है। इस जीवन-दर्शन में कहीं सम्बन्धों की याद को तीव्र किया गया है, कहीं सम्बन्ध न रह जाने की स्वीकृति है और कहीं नये सम्बन्धों की तलाश प्रमुख है। 'दुहरी टूटन' में लेखक ने स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत कहानी के भावुक कथावाचक (कवि) ने प्रेम की दुनिया तो बसाई किन्तु अन्त में उसको निराशा, व्यथा एवं टूटन के सिवा और कुछ नहीं मिला। विज्ञान के प्रभाव के कारण आज के व्यक्ति ने जिन्दगी जीने के लिए तथा सम्बन्धों की स्थापना के लिए बौद्धिक दृष्टिकोण को अपनाया है। परिणामस्वरूप उसका भावना-स्रोत विस्मृति के गर्त में कहीं खो

चला है। यही कारण है कि प्रस्तुत कहानी की नायिका जिस स्वाभाविक ढंग से कथावाचक (कवि) से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करती है, उसी अधिकार से उससे सम्बन्ध-विच्छेद करने में भी नहीं हिचकिचाती। सम्बन्ध बनाने-बिगाड़ने के संदर्भ में आज का व्यक्ति गिरगिट की तरह निपुण है। आजकल चीजें बहुत तेजी के साथ बदल जाती हैं। यहाँ तक कि भावनाएँ भी दहल जाती हैं। 'दुहरी टूटन' इस कथ्य को अक्षरशः प्रमाणित करती है। लेखक की मान्यता है कि सम्बन्धों के मामले में इस छलकपट से काम नहीं लिया जाना चाहिए, यद्यपि इस सिलसिले में वे खुलकर बात नहीं करते हैं।

डॉ० 'प्रेमी' ने कई कहानियों में व्यक्ति के सम्बन्धों को अपने सही तथा वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने के भी प्रयत्न किये हैं। उनकी एक बहुचर्चित कहानी 'कहो कैसी तबीयत है?' एक ऐसी कहानी है जिसमें लेखक ने यथार्थ की परतों को छीलने-कुरेदने की कोशिश में वस्तु-स्थिति को इस सीमा तक नंगा किया है कि उस पर झीना-हल्का पर्दा डालने की जरूरत तक भी महसूस नहीं की है। कहानी के माध्यम से मनुष्य की असली प्रकृति को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। सभ्यता तथा वैज्ञानिक संस्कृति का मुखौटा पहने आज के व्यक्ति ने सचेतनावस्था में अपनी प्रकृति को कहीं दफना दिया है। परिणामस्वरूप आजकल हम जिस मानव से मिल रहे हैं, उसकी थाह पाना सरल नहीं है। 'प्रेमी' जी ने मनुष्य की असली प्रकृति को प्रस्तुत करने की चुनौती को सहर्ष स्वीकारा है, उससे मुंह नहीं मोड़ा है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी में अपने ही लेखक-वर्ग को, शराब की अवस्था में उसके घिनौने रूप को इस सीमा तक नंगा कर दिया है कि उस नंगेपन पर

एक हल्का आवरण डालने की आवश्यकता तक भी महसूस नहीं की है। यह लेखक की ईमानदारी है कि अपने कलाकार वर्ग को इस तरह हमारे सामने प्रस्तुत किया है, चाहे उसमें स्वयं उनकी ज़ात भी क्यों न सम्मिलित हो। कहानी के अन्तिम वाक्य "भाभी सचमुच उस समय दो चेहरे वाली नागिन की तरह लगी थी मुझे"[१] से यही ध्वनि निकलती है कि लेखक बनावटी तथा खोखले सम्बन्धों के पक्षधर नहीं हैं। 'प्रेमी' जी इस प्रकार जिस जीवन-दर्शन की बात करते हैं, वह उनके सृजन की उपज है। उनकी मान्यताओं तथा मूल्यों में एकरसता नहीं रही है, बल्कि कालान्तर में उनमें परिवर्तन आये हैं। लेखक की अन्य रचनाओं जैसे "एक नाम बुझी मुस्कान", "और दरवाजा बन्द हो गया", "ऑबलीक के उस पार", "सलीब पर कटे-फटे साये" आदि में स्त्री-पुरुष के तनावपूर्ण सम्बन्धों को प्रदर्शित किया गया है। लेखक ने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया है जिससे इन तनावपूर्ण सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित होने की सम्भावना दृष्टिगोचर हो सके।

डॉ० 'प्रेमी' ने अपनी एक-आध कहानी में निम्न मध्यवग की ट्रेजडी को भी दिखाया है। 'राजमार्ग के यात्री' में आनन्द नामक नवयुवक निम्न-मध्यवर्गीय संस्कारों में पला है। अपनी सम्पूर्ण विवशताओं को निगलकर वह यार-बिरादरी, सफेद-पोशी, तथा दिखावे का जीवन व्यतीत कर रहा है। फलस्वरूप कभी वह अपने दोस्त की आसमानी कार में नज़र आ रहा है तो कभी किसी दूसरी गाड़ी में। एक अमीर घराने की सुजाता नामक लड़की उससे प्रेम करती है। उन्होंने कई मुलाकातों में कितने ही सुन्दर सपने संजोये हैं। संयोग से एक दिन सुजाता

---

१. राजमार्ग के यात्री, पृ० ७८।

उसे दिल्ली के राजमार्ग में अपनी कार लिए हुए मिलती है। वस्तुतः उस समय आनन्द माँ का आखिरी ज़ेवर बेचकर अपने बूढ़े बीमार पिता के लिए दवा लेने जा रहा था। विवश होकर उस समय उसे सुजाता के साथ एक बड़े होटल में जाना पड़ा और माँ के ज़ेवर से प्राप्त धन जल-पान पर व्यय करना पड़ा। सुजाता से निपट चुकने के बाद जब आनन्द सचेत हुआ तो उसे लगा कि कार के पहिए उसे कुचले दे रहे हैं। वह सोचने लगा कि "वह खुद एक सड़क है—राजमार्ग, जिस पर से ये पहिये गुजरने के बाद न जाने कितने पहिए गुज़र जाएंगे।"[१] प्रतीकार्थ में प्रस्तुत कहानी महानगर के भटके तथा थके-हारे युवक की कहानी बन जाती है। राजमार्ग के यात्री के लिए तमाम सड़क है जिस पर वह जा सकता है मगर ये सड़कें वास्तव में कहीं नहीं ले जातीं। शोर-शराबे और भीड़ से पूर्ण दिल्ली जैसे महानगर में आनन्द निहत्था है। सुजाता का आलिंगन-पाश उसके लिए मोह है और जब उसका मोहभंग हो जाता है तो उसके गले में लटकाई गई स्याह तख्ती पर ये शब्द चमक उठते हैं—"एक गरीब क्लर्क का बेटा। एक अभागा फुटपाथ का यात्री जिसको हक नहीं था राजमार्ग पर चलने का। लेकिन उसने जिद की और कार के पहिए के नीचे कुचल गया और माँ का आखिरी ज़ेवर बेचकर भी बीमार बूढ़े बाप की दवा न खरीद सका।"[२]

लेखक की कहानियों को देखकर उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों तथा शिल्प-सौंदर्य का पता चल जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी रचनाएं परम्परागत वादों के आग्रह से मुक्त हैं। एक महर्षि की तरह वे दर्शन या वाद का प्रतिपादन नहीं

---

१. राजमार्ग के यात्री, पृ० ४५।

२. राजमार्ग के यात्री, पृ० ४४।

करते हैं। उनकी कई रचनाओं में (जैसे 'एक बार फिर') अस्तित्ववाद जैसी समसामयिक विचारधारा के प्रभाव दृष्टि-गोचर होते हैं। 'एक नाम बुझी मुस्कान' की मुख्य पात्रा (पत्नी) पति से कहती है : "भविष्य की ओर लपके बगैर विश्वास की धूप कैसे सेंकी जाती है ?"[3] एक अन्य कहानी में उन्होंने स्त्री-पुरुष की मित्रता को मान्यता दिलाना चाही है।

'प्रेमी' जी की कहानी का रचना फलक विस्तृत है। उनकी कहानियों का विश्लेषण काव्यशास्त्रज्ञों के सीमित कठघरे में नहीं हो सकता। उनकी कहानी में साहित्य की अन्य विधाओं (जैसे निबन्ध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि) को भी आत्मसात् किया गया है और इन साहित्य-रूपों की सीमाएं एक-दूसरे के भीतर दूर तक चली गई हैं। इस संदर्भ में 'दुहरी टूटन' को देखा जा सकता है। वे कहानी की स्थिति के प्रति एवं पात्र की नियति के प्रति तटस्थ दिखाई देते हैं। वे भावुक कम किन्तु 'सेन्सिटिव' अधिक हैं। वे भोगे हुए एवं प्रामाणिक यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। 'दोराहा या चौराहा', 'राज-मार्ग के यात्री' जैसे प्रतीक आज के संश्लिष्ट जीवन के प्रतीक हैं।

लेखक ने शिल्प के प्रति नवीन दृष्टि को अपनाया है। उनकी कहानी में जो भी तत्व आए हैं, उनमें एक अन्विति है तथा एक ही प्रभाव को गहराने की शक्ति है। कभी-कभी उनका संवेदनशील कवि-हृदय भी कहानी में बोलता दिखाई देता है, जैसे 'दुहरी टूटन' में। 'प्रेमी' की कहानियों में कथा-नक कम किन्तु कथ्य अधिक होता है। कहीं-कहीं लेखक ने

---

१. उपरिवत्, ४७।

औत्सुक्य तत्व से भी काम लिया है, मगर उनकी उत्तर-कालीन कहानियों का कथ्य सपाट है। उनकी कहानियाँ जिस बिन्दु सें शुरू हो जाती हैं, प्रायः उसी बिन्दु पर समाप्त भी हो जाती हैं। उनकी कहानियों का आरम्भ, मनःस्थिति, बिम्ब, संकेत आदि के वर्णन से होता है।

'प्रेमी' जी के पात्र यथार्थ सृष्टि की उपज हैं। इनसे आपका जिन्दगी की राह में कहीं किसी मोड़ पर सामना हो जाएगा, यह निश्चित है। ये पात्र जीवन से सम्बन्धित हैं तथा सामान्य भाषा में बात करते हैं। कहानी के प्रभाव को गहराने के लिए लेखक ने कहीं-कहीं सांकेतिक वातावरण, प्रकृति-चित्रण तथा 'फ्लैश बैक' से भी काम लिया है। 'प्रेमी' जी की भाषा का प्रवाह स्वाभाविक है। वे सच्चाई तथा असलियत की भाषा में बोलते हैं। अपनी संवेदना को प्रेषण-शक्ति देने के लिए उन्होंने शब्द-प्रतीकों को नये अर्थ देने की कोशिश की है।

डॉ० 'प्रेमी' के साहित्य की बड़ी सीमा यह है कि वे आधुनिक तो हैं किन्तु समसामयिक नहीं। उनकी कहानियाँ प्रायः स्त्री-पुरुष के बीच व्याप्त पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्धों तक ही सीमित रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विशिष्ट सम्बन्ध के बाद वे जीवन को देखना ही नहीं चाहते। पति-पत्नी के सम्बन्ध निस्संदेह मूल में हैं किन्तु संसार के प्रश्नों-अप्रश्नों, समस्याओं आदि का समापन यहीं पर आकर नहीं होता। उनकी कुछ कहानियाँ नाटकीयता के अनावश्यक मोह में फंसी हैं, जैसे 'ऑबलीक के उस पार'। 'राजमार्ग के यात्री' का अन्तिम अंश कहानी को इतना बेपर्दा कर देता है कि उसका मर्म खुलकर सामने आ जाता है। यहाँ लेखक

पाठक की चेतना के लिए कुछ भी शेष नहीं रहने देते। उन्होंने बहुत-सी कहानियों को व्यष्टि-सत्य तक ही सीमित कर रखा है। कालान्तर में लेखक के दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा है। अब आपने 'लड़ाई', 'नये मूल्य की यातना' आदि में इस बात का प्रमाण दिया है कि आप समष्टि की ओर भी देखने लगे हैं।

---

# दुहरी टूटन

आज मुझे अभी-अभी ऐसा लगा जैसे मैं एक सुलगती डाल पर बैठा हुआ एक पंछी हूँ लेकिन फिर भी किसी प्रकार की घुटन या टूटन महसूस नहीं हो रही है। शायद दर्द गहराई में उतरकर किसी ज्योति को खोजने के लिए कहीं दूर चला गया है और इस समय मेरे अस्तित्व को अर्थहीन बनाकर पीछे छोड़ गया है। सामने कहीं भीगा हुआ पत्र पड़ा हुआ है जिसके अर्थ को पन्द्रह-बीस बार निचोड़ने के बावजूद फिर मरोड़ने लगता हूँ। दिमाग में अक्षर कील की तरह चुभने लगते हैं और फिर चेतना जाग जाती है। उसने लिखा था—'जीवन की संध्या में धुंधलके के बावजूद आज मैं अपने प्रेम की छोटी पोथी के पन्ने उलट रही हूँ। तुम तो जानते हो कि जब मैं अपनी ज़िद पर उतर आती हूँ तो मुझे कोई रोक नहीं सकता। आँखों की रोशनी थककर सोने वाली है लेकिन अन्दर की रोशनी की कुछ किरणें मन के प्याले में भर रही हूँ। क्या यह रोशनी कभी बीत सकती है? कभी नहीं। दिन तो किसी-न-किसी प्रकार गुजर जाता है लेकिन रात इस रोशनी से लड़ने के लिए आती है तभी भयंकर अन्धेरे में कई बार तुम्हारी तुलना अपने पति से करने लगती हूँ।" मेरी आँखों के सामने उसके पति का चेहरा अपनी सौम्यता के लिए झूल जाता है। और फिर "हाँ, बहुत-सी बातों में तुम दोनों एक से हो लेकिन कुछ बातों में जमीन-आसमान का अन्तर है। तुम एक ऐसे पत्थर हो जिससे

उद्दाम सरिता की तरह लहराती हुई मैं टक्कर मार-मारकर बिखरने की साध लेकर जीना चाहती थी। ये एक गम्भीर समुद्र हैं जिसमें अब अपने अस्तित्व को सौंपने की इच्छा दृढ़वती हो उठी है। मेरे पति जितना मेरा खयाल रखते हैं तुम तो जन्मों में भी नहीं रख सकते। वह देवता हैं और तुम कमजोर आदमी। यही परिस्थिति दुःखदायिनी है। मैं पछता रही हूँ कि पत्नी के रूप में उन्हें वह सब कुछ न दे सकी जिसपर उनका अधिकार था। ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि अगर दूसरा जन्म मिले तो उन्हें अपने प्रियतम के रूप में पाऊँ और तुम्हें पति के रूप में।" यहाँ आते ही मेरी आँखें अपने आप बन्द हो जाती हैं जैसे उसके अन्दर की रोशनी ने चकाचौंध पैदा की हो। वह आगे लिखती है—"मेरी हर रात शांत समुद्र की भांति जकड़े रहता है और क्षणों का ढेर धीरे-धीरे अपनी चमक खो बैठता है। ऐसा लगता है कि आसमान के सभी तारे टूट-टूट कर मेरे इर्द-गिर्द जमा होते जा रहे हैं। जानते हो राजू! यही पत्थर के टुकड़े मेरे अनमोल रत्न हैं, अगर मर गई तो सर्पिणी बनकर इन्हीं को छुपाये हुए कुंडली मारकर बैठ जाऊंगी।" इस भयंकर कल्पना से मुझे रोमांच हो उठता है। सहसा पसीने से लथपथ होने के बाद फिर पत्र के अक्षरों को बटोरने में लग जाता हूँ, शायद इसी आशा से कि कोई विशेष संदर्भसूत्र मेरी पकड़ में आ जाए जो जीवन का संबल बन सके। "तुमने अपनी सहपाठिनी के बारे में लिखा था। मैं तुमसे विनती करती हूँ कि उससे शादी कर लो। तुम दोस्ती में इतने आगे बढ़ चुके हो कि अब पीछे लौटना अमानवीय है। हमारे समाज में लड़के और लड़की की मित्रता का कोई अर्थ नहीं। बहुत दिनों से मैं तुमसे एक बात छुपाए हुए बैठी थी। प्यारे राजू! पहले वादा करो कि तुम मेरी इस आखिरी इच्छा को पूरी करोगे। कर लिया वादा? हाँ

अब सुनो। दो महीने पहले हॉस्पिटल से छुट्टी दे दी थी। उम्मीद है कि टी० बी० की बीमारी मौत की अतल गहराई में दबोच देगी। फिर सबकुछ ठीक हो जाएगा। वादा करो तुम अफसोस नहीं करोगे और मेरी आखिरी इच्छा जरूर पूरी करोगे। मेरे राजू रा····जू।" कड़वी हंसी हँसने के साथ पुरनम आँखों के नीले आकाश में फैलती धूप और बस-स्टैंड—

—"नमस्ते जी।"

—"तुम यहाँ कैसे ?"

—"इसी कालेज में नौकरी मिल गई है।" ग्लैमर-गर्ल दिखाई देने वाली सहेली ने जवाब दिया।

—"बहुत खुशी हुई शर्रो!" मैंने मुस्कराते हुए कहा।

—"लेकिन जनाब असली खुशी का दिन बाईस तारीख है।" उसकी सहेली ने हँसते हुए कहा।

—"बाईस तारीख को क्या होने वाला है शर्रो।" मैंने बेसब्री के साथ पूछा।

शर्रो खामोश थी। चेहरे पर कुछ मुरझाई-सी लज्जा पुत गई, शायद धूप निकल आने पर उड़ गई। चेहरा ऐसा हो गया जैसे नवम्बर की पीली-पीली धूप में सूखी चिनार की पत्ती हो। अगस्त की तरुण धूप जो सेबों को अरुणाई देती थी, जिसका स्पर्श होने से शर्रो के गुलाबी कपोलों पर अबीर की सी मसलन हो जाती थी। उस रोज नदी के किनारे अकेला बैठा हुआ था कि वह आई और मेरी खामोशी को टोका·····"देखिए यह अच्छी बात नहीं है। आज पिकनिक के दिन आप खोये-खोये-से नहीं रह सकते। आज तो हमारा साथ देना ही पड़ेगा।" यह सुनकर मैं चौंक पड़ा था। चौंका क्यों ? सवाल सुनना

पड़ा। "आप कहाँ रहा करते हैं श्रीमान जी।" और सच बात थी मैं बहुत दूर चला गया था। किरण ने कहा—"आज पिक-निक के दिन वह गीत तुम्हें सुनाना ही पड़ेगा।"

—"कौन-सा ?"

—"वही जिसमें तुमने मुझे रूप-गन्ध की सरिता कहा है। जब तुम थक जाओगे तो यही सरिता अपनी लहरों की सेज पर तुम्हें सुला लेगी।"

—"तुम भी अब कविता करने लगीं।"

—"क्यों नहीं ? तुम्हारा कुछ तो असर पड़ना ही चाहिए। राजू, सच कहती हूँ मैंने तुम्हें अपनी पूजा में बसा लिया है। अब तुम्हीं मेरे अन्तर के दीप बनकर मुझे रोशन कर रहे हो।"

—"किरण, मुझे डर लगता है कि कहीं तुम वीणा की करुण रागिणी न बन जाना।"

—"तो क्या होगा। तुम उसमें स्वर-सरगम की तरह बसे रहोगे।"

और उस रोज का वही मजाक कड़वा सत्य बन गया। दूर कहीं न भाग सका। किरण की शादी हुई। शादी के बाद वह जब वापस आई तो मैंने पूछा—

—"कहो कैसी हो ?"

वह ठहाका मारकर हंस पड़ी और फिर थोड़ी देर बाद फूट-फूट कर रोने लगी। मैं अवाक् देखता रह गया उसे।

किरण को सुन्दर और सुशील वर मिला था, कोई ऊंचा ऑफीसर। मैंने उसकी शादी में इतना काम किया कि किसी से दो मिनट बातें करने का समय भी न निकाल सका। मैंने उसे

समझाया और जितना ही समझाया उतनी ही ज्यादा वह रोई। फिर मुझसे न रहा गया—

—"आखिर तुम रोती क्यों हो ? क्या किसी ने तुम्हारा दिल दुखाया है ?"

—"हाँ।"

—"किसने।"

—"तुमने।"

—"मैंने।"

—"हाँ, हाँ तुमने।"

—"किरण यह तुम क्या कह रही हो। तुम्हारी शादी पर जितना मैं खुश हुआ हूँ उतना शायद ही कोई हुआ होगा। ईश्वर तुम्हारे सुहाग को हमेशा महफूज रखे। तुम मुझे गलत समझ रही हो। मैं इतना नीच नहीं हूँ। तुम्हें सुखी देखकर मुझे बिल्कुल जलन नहीं हुई। मुझे यकीन है कि तुम्हें मेरा उपहार पसन्द आया होगा। वह जूड़े के पिन।"

और फिर उस दिन के बाद कमरे में पहाड़ आँसू बहाता रहा। चाँद ने तकिये में मुँह छिपा लिया। अब हवा के मामूली से आघात पर इस ऊँचे देवदारु को झुकने में कोई लाज नहीं लगती। हर आघात से यह अन्दर-ही-अन्दर टूटता रहता है।

—"अरे ! आप फिर कहीं खो गये हैं।" उसका सवाल फिर चौंका गया। मेरे हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के बीच रखते हुए पूछा—"आप बताइए ना प्लीज। बार-बार चौंक क्यों पड़ते हैं ? अब चलिए, उठिए। सामने जो शिवजी का मन्दिर है, वहाँ तक सैर करें। देखिए, कैसा सुन्दर दृश्य है। इच्छा होती है कि कोई मुझे कविता लिखना सिखा दे। आप सिखा सकते हैं ? मेरे

अन्दर कविता के भाव तो हैं पर एक्सप्रेस करना नहीं जानती। आइए, इस चश्मे का ठंडा पानी पियें ! हैं, हैं·····न न ना आप न उतरिये; मैं अपने हाथों से पिलाऊँगी।"

—"वह कैसे ?"

—"अपनी अंजलि में भरकर।"

और शर्रो ने सचमुच अंजलि में पानी भर लिया। पहले तो झिझका लेकिन एक बच्चे की तरह शर्रो की आज्ञा को न टाल सका। शर्रो ने मेरे भीगे हुए रूमाल से अपने होठों को पोंछा।

—"आप दर्दभरी कविताएं क्यों लिखते हैं ? बताइये न प्लीज़। आज मैं पूछ के ही रहूँगी।"

—"शर्रो बड़ी किस्मत से ही दर्द मिला करता है। पहले मैं बड़ा कठोर आदमी था। सब सह लेता था। अब नहीं सहा जाता तो लिख लेता हूँ। यह दूसरी टूटन है। सब कुछ दुहरा है। आँखें खोलकर देखिये तो वह बादलों से घिरा हुआ चाँद। चाँद बादलों से घिरा हुआ टुकड़ों में टूटता चला गया है। एक टूटन बाहर एक अन्दर। बाहर की वस्तु ही अन्दर की टूटन पैदा करती है। ऐसे ही समय अन्दर की वस्तु पास पास बैठ जाती है। समय रथ की चाल से नहीं चल रहा। मन के वेग से भी तेज चाल है उसकी।" तभी शर्रो मेरा हाथ छोड़कर उठ गई थी।

—"आप वाईस तारीख को इनकी शादी में जरूर आयेंगे न !" सहेली ने फिर पूछा।

मैंने शर्रो की दृष्टि में बहुत-सी टोकरियाँ उलट दीं। शर्रो की आँखों की तरलता में वे उसी तरह डूब गईं जैसे कंकड़ तालाब में डूब जाते हैं। कई बार कुछ लहरें उछलीं लेकिन तटों ने उन्हें समेट लिया।

"आप बड़े बेरहम हैं। ऐसे लापता हुए कि आज मिले हैं। बेचारी शर्रो. ...।' फिर दो मिनट का सन्नाटा। बस भी आ गई थी। वे दोनों उसमें सवार होकर चल दीं। दृष्टि के सामने एक धूल का गुबार उठा। मैं कहना चाहता था—शर्रो, मुझे माफ कर दो। तुमने मुझे एक मित्र की दृष्टि से देखा और मैंने निभाने की कोशिश की। इस बीच तुम्हारे दोस्त पर क्या गुजरी; ऐसे शुभ अवसर पर मैं कैसे तुम्हें बता सकता। तुम खुश रहो और यकीन करो कि मैं ऐसी मिट्टी का बना हुआ हूँ कि हर हालत में दूसरों के अनुसार बदल सकता हूँ। रहा अकेलापन तो मैं उससे समझौता कर चुका हूँ। एक बार तुम्हीं ने पूछा था—"आप कभी अपने अकेलेपन से ऊबते नहीं? आपका मौन कितना भयंकर है? इस बेमाप एकांत को कैसे जीत पाओगे?"

मैंने जवाब दिया था—"शर्रो, मेरा हृदय निर्वासित नहीं है। मैं अकेला होता ही कब हूँ। बाहर से मैं जितना एकांत दिखाई देता हूँ, उतना ही अन्दर से कोलाहलपूर्ण। वहाँ मैं खेलता हूँ, हँसता हूँ, रोता हूँ, रूठता हूँ और मचलता हूँ।"

आज ही तो शर्रो की शादी का दिन है। पंछी सुलगती डाल पर बेसुध होता जा रहा है। उसके बेहूदे धुएँ में टँगा हुआ तनाव हड्डियों को हिलाता हुआ आत्मा में व्याप्त होता जा रहा है—समझ में नहीं आता क्या करूँ? किरण की चिन्ता की मुट्ठी भर राख पीकर सो जाऊँ? उसकी आखिरी इच्छा! हँसिये की तरह दुहरी होती हुई हड्डियों को मानो चीरती जा रहा हो।

फिर घबराकर मैं बांहों में शून्य को कस लेता हूँ।

———

अन्दर कविता के भाव तो हैं पर एक्सप्रेस करना नहीं जानती। आइए, इस चश्मे का ठंडा पानी पियें ! हैं, हैं·····न न ना आप न उतरिये; मैं अपने हाथों से पिलाऊँगी।"

—"वह कैसे ?"

—"अपनी अंजलि में भरकर।"

और शर्रो ने सचमुच अंजलि में पानी भर लिया। पहले तो झिझका लेकिन एक बच्चे की तरह शर्रो की आज्ञा को न टाल सका। शर्रो ने मेरे भीगे हुए रूमाल से अपने होठों को पोंछा।

—"आप दर्दभरी कविताएं क्यों लिखते हैं ? बताइये न प्लीज़। आज मैं पूछ के ही रहूँगी।"

—"शर्रो बड़ी किस्मत से ही दर्द मिला करता है। पहले मैं बड़ा कठोर आदमी था। सब सह लेता था। अब नहीं सहा जाता तो लिख लेता हूँ। यह दूसरी टूटन है। सब कुछ दुहरा है। आँखें खोलकर देखिये तो वह बादलों से घिरा हुआ चाँद। चाँद बादलों से घिरा हुआ टुकड़ों में टूटता चला गया है। एक टूटन बाहर एक अन्दर। बाहर की वस्तु ही अन्दर की टूटन पैदा करती है। ऐसे ही समय अन्दर की वस्तु पास पास बैठ जाती है। समय रथ की चाल से नहीं चल रहा। मन के वेग से भी तेज चाल है उसकी।" तभी शर्रो मेरा हाथ छोड़कर उठ गई थी।

—"आप वाईस तारीख को इनकी शादी में जरूर आयेंगे न !" सहेली ने फिर पूछा।

मैंने शर्रो की दृष्टि में बहुत-सी टोकरियाँ उलट दीं। शर्रो की आँखों की तरलता में वे उसी तरह डूब गईं जैसे कंकड़ तालाब में डूब जाते हैं। कई बार कुछ लहरें उछलीं लेकिन तटों ने उन्हें समेट लिया।

"आप बड़े बेरहम हैं। ऐसे लापता हुए कि आज मिले हैं। बेचारी शर्रो. ...।' फिर दो मिनट का सन्नाटा। बस भी आ गई थी। वे दोनों उसमें सवार होकर चल दीं। दृष्टि के सामने एक धूल का गुबार उठा। मैं कहना चाहता था—शर्रो, मुझे माफ कर दो। तुमने मुझे एक मित्र की दृष्टि से देखा और मैंने निभाने की कोशिश की। इस बीच तुम्हारे दोस्त पर क्या गुजरी; ऐसे शुभ अवसर पर मैं कैसे तुम्हें बता सकता। तुम खुश रहो और यकीन करो कि मैं ऐसी मिट्टी का बना हुआ हूँ कि हर हालत में दूसरों के अनुसार बदल सकता हूँ। रहा अकेलापन तो मैं उससे समझौता कर चुका हूँ। एक बार तुम्हीं ने पूछा था—"आप कभी अपने अकेलेपन से ऊबते नहीं? आपका मौन कितना भयंकर है? इस बेमाप एकांत को कैसे जीत पाओगे?"

मैंने जवाब दिया था—"शर्रो, मेरा हृदय निर्वासित नहीं है। मैं अकेला होता ही कब हूँ। बाहर से मैं जितना एकांत दिखाई देता हूँ, उतना ही अन्दर से कोलाहलपूर्ण। वहाँ मैं खेलता हूँ, हँसता हूँ, रोता हूँ, रूठता हूँ और मचलता हूँ।"

आज ही तो शर्रो की शादी का दिन है। पंछी सुलगती डाल पर बेसुध होता जा रहा है। उसके बेहूदे धुएँ में टँगा हुआ तनाव हड्डियों को हिलाता हुआ आत्मा में व्याप्त होता जा रहा है—समझ में नहीं आता क्या करूँ? किरण की चिन्ता की मुट्ठी भर राख पीकर सो जाऊँ? उसकी आखिरी इच्छा! हँसिये की तरह दुहरी होती हुई हड्डियों को मानो चीरती जा रहा हो।

फिर घबराकर मैं बांहों में शून्य को कस लेता हूँ।

———

# डॉ० रमेशकुमार शर्मा

डॉ० शर्मा मूलतः कवि हैं। कश्मीर में वर्षों से रहने के कारण यहां के प्राकृतिक सौंदर्य ने उनको प्रभावित किया है, जिसके बिम्ब उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। व्यक्ति की मनोदशाओं के अनुरूप उन्हें कश्मीर के सौन्दर्य में दमघोंट और मुरझाया हुआ धुंधलका दिखाई देता है, तो कहीं बाह्य परिवेश व्यक्ति के अन्तर्मन के अनुरूप रोमानी रंग में सराबोर हो गया है। उनकी कविता में छायावादी कविता के संस्कार ढूंढ़े जा सकते हैं।

'चीख' लेखक की कहीं भी प्रकाशित होने वालो प्रथम कहानी है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से रचनाकार ने एक कल्पित घटना के सहारे कश्मीरी परिवेश का आंचलिक रंग प्रस्तुत करने की कोशिश की है। यह रंग स्थानीय शब्दों, मुहावरों आदि से गहरा हो गया है। वस्तु के लिहाज से यह एक अलग प्रकार की रचना ठहरती है। कहानी में वे सारे परम्परागत तत्त्व मौजूद हैं जिनकी चर्चा काव्य-शास्त्रज्ञ आरम्भ से करते आये हैं।

प्रस्तुत कहानी की कुछ सीमाएँ हैं। कहानी की संवेदना जीवन के समानान्तर चलती नहीं दिखायी देती है। कहानी में फैंटसी को स्थान दिया तो गया है मगर उससे जीवन को बारीकी से देखने में सहायता नहीं मिलती है। कहानी की रचना-प्रक्रिया कुछ आरोपित-सी लगती है। अपनी सीमाओं के बावजूद कहानी-कार का भविष्य उज्ज्वल है।

# चीख

"आप नहीं जानते डॉ० शर्मा हमारी कश्मीरी भाषा में जितने मुहावरे हैं, सम्भवतः भारत की किसी अन्य भाषा में नहीं होंगे। और जो आप नामों का, खासकर 'सरनेम्स' का जिक्र कर रहे हैं उनकी तो अपनी अलग कहानी है। हमारे समाज में नाम रखने, चिढ़ निकालने की 'हाबी' है। छोटी-छोटी बातों पर जो नाम रख दिये जाते हैं, वे बस चिपक ही जाते हैं, यहाँ तक कि फिर जिसकी चिड़ निकाली गई होती है वह भी उस चिढ़ को 'सरनेम' के रूप में स्वीकार कर लेता है।"

मैंने कहा : "सो कैसे ? जब आदमी किसी शब्द या नाम से चिढ़ता है तो उसे स्वीकारता कैसे है ?"

"यही तो मजे की बात है। देखिए कुछ 'सरनेम्स' हैं: 'चर-बच्चा' यानी चिड़िया का बच्चा, 'थालचूर' अर्थात् थालीचोर, 'कारहलू' यानी टेढ़ी गर्दन। 'वातल' का अर्थ है भंगी, 'डुल्लू' का अर्थ तसलेनुमा बर्तन है। एक सज्जन ने सबसे पहले अचकन पहिनना आरम्भ किया, उनका नाम था तेजकिशन कौल, उन्हें कुछ लोगों ने तेजअचकन कहना आरम्भ कर दिया, सब कहने लगे। आज उनकी दुकान का नाम है 'अचकन एण्ड सन्स' क्योंकि अन्य किसी नाम से उन्हें अब कोई जानता ही नहीं। नामों को छोटा करना और चिढ़ जोड़ना हमारी प्रवृत्ति है। अजी आपको क्या बतायें, एक आदमी का नाम 'गुसगिलास' पड़ गया, एक

का अलयखन[1] पड़ गया और तो और बंसीलाल रैना गए फ्रांस, अब उन्हें 'बन फ्रेंच' कहते हैं। एक व्यक्ति ने जरा ज्यादा भात खाया तो उसे लोगों ने 'भतजिन'[2] कहना शुरू कर दिया और अब उस परिवार को अन्य किसी नाम से पहिचाना ही नहीं जाता। जैसे बन्सीलाल का 'बन' हो गया वैसे ही त्रिलोकीनाथ का 'त्रय' हो जाता है, पृथ्वीनाथ का 'प्रथ' हो जाता है, अवतार का 'अव' और रमेश का 'रम्भ' या 'रम्ब' हो जायेगा, जनाब आप क्या समझते हैं ?"

"परन्तु भाई·····"

"सुनिए तो सही। लोगों की समझ में कल्हण, बिल्हण, मम्मट नाम नहीं आते, कि इनका क्या अर्थ है ? एक 'विद्वान्' प्रोफेसर एक बार कह रहे थे कि ये दरद भाषा के नाम हो सकते हैं। वास्तव में ये नामों और 'निक-नेम्स' के ही शार्ट फार्म हैं। अरे डाक्टर साहब हमारे यहाँ तो किस्सा मशहूर है। एक सज्जन के मकान के आगे शहतूत का पेड़ था, उनको लोगों ने तूत नाम से पुकारना आरम्भ कर दिया। बेचारे ने पेड़ उखड़वा दिया मगर थोड़ा-सा गड्ढा रह गया तो उसके परिवार के लोग 'खुड़ा'[3] कहे जाने लगे। आगे की पीढ़ी ने गड्ढा भरवाया तो थोड़ा टीला-सा रह गया तो उनका नाम 'टेंग'[4] रख दिया गया, और आज भी उन्हें टेंग ही कहते हैं, इस नाम से मुक्ति का प्रयत्न फिर उन

---

१. लौकी की दही वाली सब्जी।

२. जिन्न की तरह अधिक भात खाने वाला।

३. गड्ढा।

४. टीला।

लोगों ने नहीं किया। और यही नहीं·····"

"अच्छा भाई आपका 'सरनेम' खर क्यों पड़ गया, यह पूछ कर मैंने गलती की। इस नाम-पुराण को समाप्त करो और यह बताओ कि घर पर सब कुशल-मंगल है? भाभी ठीक हैं? बेटे की पढ़ाई कैसी चल रही है? और हाँ किसी खास काम से तो नहीं आये थे?"

"बात यह है डॉ० शर्मा, मैं बड़ी परेशानी में हूँ। आपको तो मालूम ही है, मेरे पिताजी पं० रामकृष्ण खर का तीन मास हुए, स्वर्गवास हो गया और उसी दिन से·····"इतना कहकर वे चुप हो गए, और कुछ सशंक एवं भयभीत से कभी मुझे देखते और कभी चारों ओर।

मैंने कहा : "कहिए, कहिए क्या बात?"

"क्या बताऊँ डाक्टर साहब, कुछ समझ में नहीं आता कि कैसे आरम्भ करूँ, कहाँ से आरम्भ करूँ। बताना नहीं चाहता। आप बाहर के आदमी हैं इसलिए सोचता हूँ आपको बता भी दूँ तो कोई हानि नहीं है और फिर आप मेरी सहायता भी कर सकते हैं। यहाँ के कश्मीरी पण्डित तो सिर्फ एक-दूसरे की गर्दन काटना जानते हैं। सच कहा है—ब्राह्मण कुत्ता हाथी, ये न जाति के साथी।"

"बोलिए न। जहाँ से आपकी समझ में आए आरम्भ करिए, मैं आगे-पीछे का हिसाब लगा लूँगा।"

काफी देर सोच समझकर वे बोले—"आप जानते हैं मैं अली-कदल[1] का रहने वाला हूँ। कुछ दूर पर एक गली है 'गाढ़ कूचा',

१. कदल > पुल (श्रीनगर झेलम पर बसा है, मुहल्ले पुलों से जाने जाते हैं)।

जहाँ मछलियाँ बिकती हैं। मेरे पिताजी कभी भी रात के समय उस गली से नहीं निकलते थे। रात में अगर उस गली के पास होते तो चक्कर काटकर निकलते थे, उन्हें मानो बड़ा भारी डर·····रात को·····उस गली में से गुजरने में लगता था। मैं आता जाता था उस गली में से—रात को भी। मगर ·····मगर अब उस गली में रात को मुझसे नहीं घुसा जाता। आपको शायद नहीं मालूम, उस दिन मेरी माताजी दही लेकर आ रही थीं, सामने से एक गाय भागती हुई आई, बचते-बचते वे एक टैम्पो के नीचे आ गईं, भयंकर चोट लगी उनके। रात के आठ-नौ बजे थे, पिताजी घर में अकेले थे, दौड़े-दौड़े गए और आस-पास के अपनी जान-पहिचान के एकमात्र डाक्टर के घर की ओर चले। डाक्टर गुलामहसन त्रम्बू गाढ़कूचा में रहते हैं। पिताजी पहले तो थोड़े से ठिठके, परन्तु फिर गली में घुस गए। और·····और डॉ० त्रम्बू के घर से थोड़ा-सा पहले एक छोटी से अंधेरी गली आती है, उसके पास पहुँचते ही, बड़ी जोर से चीख मार कर गिर पड़े, और वहीं खत्म हो गये। जब उन्हें उठाया तब उनकी आँखें बाहर को निकली हुई थीं, दोनों हाथ गले पर थे, जैसे किसी से अपनी गर्दन छुड़ाना चाहते हों। सारा शरीर नीला था। फिर क्या हुआ, यह बताने की बात नहीं है, यही समझिए कि मेरे माँ-बाप दोनों उसी दिन चल बसे।····

"मुझे बड़ा दुःख है खर साहब परन्तु·····"

"जी नहीं, आप समझे नहीं। बात ये है, बात ये है कि अब मैं भी गाढ़कूचा से डरता हूँ—रात में उसमें से निकल नहीं सकता हूँ।"

"तो क्या हुआ, यह तो समझने योग्य बात है, आपके पिताजी

का देहान्त वहीं·····"

"जी नहीं यह बात नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे रात में उस गली में कोई मेरा इन्तजार कर रहा है, कोई गैबी ताकत, कोई अनजान 'ईविल पावर' जैसे वहाँ है, जो रात को उस गली के निकट पहुँचने पर मुझे मानो अपनी ओर खींचती है। मुझे पकड़ने को, मुझे खा जाने को·····कुछ समझ में नहीं आता, क्या माजरा है?"

"कुछ नहीं है। थोड़े दिनों में आप सब भूल जायेंगे। समय लगेगा जरूर·····"

"नहीं, नहीं, सुनिए तो। मेरे बाबा की मृत्यु भी इसी प्रकार गाढ़कूचा में हुई थी, और·····और मुझे लगता है, मैं भी इसी प्रकार मरूँगा।·····नहीं, नहीं, ठहरिए, मुझे कह लेने दीजिए। मैं एम० एस-सी० पास हूँ, अन्धविश्वासी नहीं हूँ। परन्तु, I tell you, it is a physical presence of some solid evil power, that disturbs me, it's not my imagination only."

मेरे मित्र राधाकृष्ण स्वर जब उत्तेजित हो जाते थे, अंग्रेजी बोलने लगते थे।

"खैर असली बात यह है कि हमारे खानदान में, जहां तक मुझे याद है केवल एक ही लड़का रहा है और पिछली तीन पीढ़ियों से मेरे पूर्वज गाढ़कूचा में इसी प्रकार मरे हैं। मेरे एक पड़ोसी वृद्ध कहते हैं कि ग्यारह पीढ़ियों से ऐसा हो रहा है। एक सज्जन कहते हैं कि ग्यारह पीढ़ियों तक ऐसा होगा। क्या मामला है कुछ समझ में नहीं आता? कभी-कभी लगता है, लगता है·····जब मैं अपने बेटे अनिल को देखता हूँ·····

अपने एकमात्र पुत्र को देखता हूँ·····तो····ओह। लगता है—मैं पागल हो जाऊँगा।"

"·····"

"डा० शर्मा, क्या अगले इतवार को आप मेरे घर आने का कष्ट करेंगे ? वहीं आपको बताऊँगा कि आपसे क्या सहायता चाहता हूँ।"

"अरे भई जाड़े के दिन हैं, कभी भी बरफ पड़ सकती है। तुम्हारी गलियों में·····" मैं अचानक चुप हो गया और आने का वायदा कर दिया। थोड़ी देर चुपचाप बैठकर, आने की पुनः याद दिलाकर राधाकृष्ण जी चले गये। मैंने उनसे कहा कि सबेरे आऊँगा, नाश्ता उनके पास करूँगा।

× × × ×

कश्मीर में रहते मुझे १५-१६ वर्ष हो गए हैं। खान-पान, रहन-सहन में कश्मीरी तौर-तरीकों को आवश्यकतानुसार अपनाया भी है मैंने, फिर भी फिरन[1] पहिनकर बाहर बाजार में नहीं निकलता हूँ। घर में फिरन तथा कांगड़ी का प्रयोग ही करता हूँ क्योंकि कश्मीर की ठण्ड कपड़ों से नहीं आग से जाती है। नवम्बर के अन्त के दिन थे। जवाहर नगर से अलीकदल छः-सात किलोमीटर है। शनिवार के प्रातः से ही घनघोर बादल थे—बनिहाल की दिशा से काले बादल आने पर वर्षा अवश्य होती है और शीत बढ़ने पर हिमपात हो जाता है। शनिवार-रविवार की रात्रि को तापमान सम्भवतः शून्य से ३ या ४ डिग्री सैलसियस नीचे था। कसकर ठण्ड पड़ रही थी। रात को तीन-

१. चोगानुमा ढीलाढाला कश्मीरी पहिनावा, जो ऊनी होता है और जिसके नीचे अलग से सूती अस्तर-सा कपड़ा होता है।

चार बजे उठा तो खिड़की में से देखा कि खूब बरफ पड़ रही थी। बतख के कोमल पंखों (ईडर डाउन) जैसे हिम के शिशु एक-एक कर शीत की रेशम डोरी के सहारे उतर रहे थे। चारों ओर श्वेताभा थी—स्वप्नलोक-सा लगता था। चिनारों और सफेदों पर, बिजली के तारों पर, धीरे-धीरे जमती बरफ अपनी मौन सुन्दरता में स्तब्ध-सी थी।

सबेरे उठा तो—हिमपात बन्द हो गया था। बच्चे घरों से निकल कर बरफ से गेंद-तड़ी खेल रहे थे। आकाश रोमिल-हिम-मेघों से आच्छादित था। श्रीनगर घाटी पर जैसे किसी ने बोतल की तरह डाट लगा दी थी। चारों ओर के पहाड़ों से घिरी ७० कि०मी० चौड़ी और लगभग १२० कि०मी लम्बी श्रीनगर घाटी हिम-स्फीत मेघों के आलिंगन में बंधी, जकड़ी हुई थी। घर से निकला तो घुटनों-घुटनों बरफ में चलना मुश्किल। कुछ पिघलती, कुछ रपटनी बरफ चलने नहीं देती थी। टैक्सी-टैम्पो बन्द। लोग टक्कर मारने के बाद 'होश' कहते हुए निकल जाते थे। पैदल ही अलीकदल पहुँचा। शिबनी भाभी ने आते ही गरम चादर दी, समावर से गरम-गरम कहवा पिलाया और नानबाई के गिरदा[1] तथा 'मत्स'[2] नाश्ते को दिए और गरमा-गरम कांगड़ी फूँककर तापने को दी। भकाभक गरमी में चैन पाकर मैंने खर से कहा, "अब बताओ क्या मामला है—क्यों मियां-बीबी परेशान हो ?" वह चुपचाप उठकर चला गया। थोड़ी देर में भीतर के कमरे से निकल कर एक पुलिन्दा मेरे सामने रख दिया और बोला :—

---

१. तन्दूरी रोटी—विशेष प्रकार की।

२. कीमे के, परवलनुमा तथा तले हुए पिण्ड।

"आज से ५०-१०० वर्ष पूर्व कश्मीरी शायद शारदा लिपि में ही लिखी जाती थी। आज दो-एक पुरोहितों को छोड़कर कोई इसे पढ़ नहीं पाता। मेरे पास एक डायरी-नुमा दस्तावेज है, शारदा में लिखी है, तुम्हारे विभाग में एक पुरोहित सज्जन प्रवक्ता हैं, सुना है वे शारदा, प्राचीन शारदा पढ़ सकते हैं। भाई इसे पढ़वाकर अनुवाद करा दो, बड़ा एहसान मानूँगा। मेरे पिताजी इसे पढ़ते थे—रात में। हमें देखने भी नहीं देते थे। जब-जब पढ़ते थे, दो-तीन दिनों तक चुपचाप गुमसुम रहते थे। जैसे उनकी पीठ के पीछे कोई पिस्तौल लगाए है, इस तरह भय-भीत से रहते थे। फिर भी साल-छः महीने बाद, इसे फिर पढ़ते थे। कोई १५ वर्ष पूर्व उन्होंने एक पुरोहित से पढ़वाया था इसे, वह ऐसा भागा कि फिर कभी हमारे घर की ओर मुंह न किया। वह भी अब मर चुका है। मुझे लगता है इन पन्नों में मेरे परिवार के लोगों की अप्राकृतिक मृत्यु का कारण लिखा है।"

इसी बीच उनका १५-१६ वर्ष का पुत्र आ गया। राधा-कृष्ण ने उसे भगा दिया।

मैंने देखा तो उस पाण्डुलिपि में कोई २५-३० पन्ने थे, ८०-१०० वर्ष पुराना कागज था। कश्मीरी भाषा ही लिखी होगी—परन्तु लिपि दो प्रकार की थी। दोनों में स्पष्ट अन्तर था—और दोनों लिपियों के कागज भी भिन्न थे। एक-दूसरे से ३०-४० वर्ष पुराना लगता था। अपने 'पाठ-शोध-विज्ञान' से इतना ही अन्दाजा मैं लगा सका। कुछ तांत्रिक चिह्न भी बीच में बने थे। एक नक्शा-सा भी बना था। खैर·····

× × × ×

मेरे विभाग के हुण्डू महोदय तो उस पाण्डुलिपि को पढ़ न सके, परन्तु जम्मू-कश्मीर सरकार के 'रिसर्च-विभाग' के पं०

जियालाल मिच्चू ने उसका जो अनुवाद अपनी कश्मीरी-हिन्दी में किया उसका शुद्ध एवं व्यवस्थित रूप मैं अपने शब्दों में दे रहा हूँ। सर्वप्रथम किसी अवतार कृष्ण कौल[1] ने लिखा था :—

(आरम्भ के चार पन्ने गायब थे) "गाढ़कूचा की उस छोटी-सी अंधेरी गली में एक विशाल सर्प रहा करता था, आने-जाने वालों को उसकी भयंकर फुसकार सुनाई देती थी—विशेषकर रात को। जिन लोगों ने उसे देखा था, वे कहते थे कि उसके बड़ी-बड़ी मूंछें थीं। मेरे पिता पं० माधवजू को एक बार वीरू की अभिनव गुप्त-गुफा में एक तांत्रिक मिला था जिसने मंत्र तथा नक्शा उन्हें दिया था और बताया था कि राजा कनिष्क के समय का एक विशाल खजाना उस सर्प के संरक्षण में है (इसके बाद विस्तार से कनिष्क के समय की कथा दी हुई थी, जिसके विषय में फिर कभी लिखूँगा) तथा जो व्यक्ति उस मंत्र को सिद्ध कर लेगा सर्प उसके वश में हो जायगा और सर्प तथा मंत्रधारक दो शरीर एक प्राण हो जायेंगे—वे एक-दूसरे के शरीर में अपने प्राण डाल-बदल सकेंगे। (इसके आगे के दो पन्ने एकदम गले कटे थे, पढ़े नहीं जाते थे)·····पता नहीं पिताजी को क्या हो गया है। सर्प को पकड़ कर एक पिटारी में रख छोड़ा है, परन्तु उस स्थान से खजाना खोदकर आज तक नहीं निकाला है, आठ महीने हो गए हैं। हमारे चाचा कहते हैं कि अगर इस सर्प को मार दिया जाय तो खजाना प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु पिताजी ने मुझसे कहा था अवलाल[2] गढ़ा हुआ धन प्राप्त करने का प्रयत्न करना पाप है। अपने पुरुषार्थ से प्राप्त धन ही फलता

---

१. राधाकृष्ण ने बताया कि उसके बाबा के बाबा का नाम अवतार-कृष्ण था और वे कौल ही लिखते थे, तब तक 'खर' नहीं बने थे।

२. अवतारकृष्ण का लघुरूप 'अव' तथा 'लाल' प्रेम-सम्बोधन है।

है। ये सर्पराज कश्मीर के महाराज के कोषाध्यक्ष पुरुष्कज हैं, इनको मत छेड़ना। मैं इन्हें ले आया हूँ, मैंने भारी भूल की है। अब आज से तीसरी अमावस्या को इन्हें वहीं छोड़ आना है। इस बीच इन्हें कुछ हो गया तो मेरे ही प्राण नहीं जायेंगे हमारे परिवार का स्थायी अहित हो जायगा।" पिताजी रोज उस सर्प को दूध पिलाते।·····(यहाँ फिर कुछ अस्पष्ट था)····· चाचा तथा माँ ने आंगन में रखकर उस बन्द पिटारी पर खौलता हुआ पानी डालना आरम्भ किया। पिटारी में से भयंकर आवाजें आने लगीं। चारों ओर भाप छा गई। मध्य रात्रि का समय था। दूसरा गड़आ[1] उबलता पानी पड़ने पर अचानक दूसरी मंजिल पर सोते पिताजी की विकराल चीख सुनाई दी "अवलाला! मोर हस हा"[2] और चारों ओर घोर सन्नाटा छा गया। सारे घर में दुर्गन्ध भर गई थी।·····सबेरे वह तांत्रिक भी आया और उसने कहा कि पिताजी के साथ ही, उसी चिता पर, सर्पराज की भी दाह-क्रिया की जाय, परन्तु घर-मुहल्ले वाले माने नहीं, इसलिए हमने उस मरे सर्प के अधजले शरीर को वहीं गाढ़कूचे में उसके स्थान पर फेंक दिया। तांत्रिक ने इतना हंगामा किया कि पिताजी की दाह-क्रिया में शाम हो गई। (यहाँ लगभग आधा पन्ना गायब था)·····परन्तु मैं नहीं माना। सब लोग चले गए परन्तु मानो मुझे कोई दैवी-शक्ति गाढ़कूचा की ओर खींच रही थी। मन करता था कि देखूँ कि उस सर्प के शरीर का क्या हुआ। उस स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज सुनाई पड़ी। चारों ओर अंधेरा था, अमावस्या की रात्रि थी। पिताजी की दाह-क्रिया के बाद शीघ्र घर पहुँचकर

---

१. लोटा।

२. अवलाल! मुझे मार दिया।

स्नानादि करना था, इसलिए मैंने पैर बढ़ाए। उस संकरी अंधेरी गली के निकट पहुँच कर देखा कि एक नवजात शिशु पृथ्वी पर पड़ा बड़े करुण स्वर से रो रहा है।

(इसके बाद लगता था कि क्या तो अवतारकृष्ण ही कह रहे हैं, परन्तु लिखाई किसी और की थी)·····चारों ओर अंधेरा था; मैं सोच रहा था कि उस शिशु को उठाकर मैंने गलती तो नहीं की ? फिर सोचा घर चलकर चाचा को दूँगा, उनके कोई बच्चा नहीं है, बेटा मिल जायगा।·····मैं सोच रहा था कि दोनों हाथों में नवजात शिशु को उठाकर दूर तक चलना कितना कठिन है। लगता है जैसे बच्चा पत्थर का-सा हो गया है—एकदम भारी।·····लेकिन कैसा चुप हो गया है। धीरे-धीरे मेरी बांहों में जैसे दम ही न रहा·····मैंने बच्चे को चलते-चलते में संभाला। ऐसा लगा जैसे भारी तथा बड़ा होता जा रहा है। मैंने सोचा आगे चलकर दीनानाथ रैना के दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठकर थोड़ा आराम करूँगा। वे लोग जल्दी सोते हैं। जगाऊँगा तो नहीं क्योंकि शव-यात्रा में से आ रहा हूँ।·····मुझे लगा जैसे मेरे पैरों से कोई चीज बार-बार छू जाती है, टकरा जाती है। कोई गोल-सी, ठण्डी चीज। सामने के घर की खिड़की में से प्रकाश आ रहा था, घुप् अंधेरे में से निकलकर मैंने अपनी गोद के बच्चे को देखा, तो पत्थर-सा होकर कुछेक क्षण वहीं खड़ा का खड़ा रह गया। बच्चे की कटि के नीचे का भाग विशाल सर्प के शरीर में बदल गया था और मेरे पैरों तक निर्जीव-सा लटक रहा था, शायद वही मेरे पैरों से छू-छू जाता था। भारी, काला, मोटा घायल-सा विशाल सर्प। बच्चे के ऊपर का हिस्सा बढ़ गया था और उसके सिर के स्थान पर·····हे भगवान् ! रक्षा करो प्रभु। उसके सिर के स्थान

पर मेरे स्वर्गीय पिताजी का सिर था, जिनकी दाहक्रिया करके मैं लौटा था।

.....मुझे आज भी याद है। वे ही छोटे-छोटे बाल, पगड़ी नहीं थी, वही अधकचरी सिक्खों जैसी दाढ़ी, वे ही उलझी-उलझी सी मूंछें। चेहरे पर एक विचित्र अवर्णनीय भाव—घृणा, संतोष, क्रोध, प्रेम पता नहीं क्या था ? सबसे शक्तिशाली थीं वे आँखें। लाल और तेजस्वी.....जैसे ही मेरी नजर उनकी नजर से मिली, ऐसा लगा जैसे वे आँखें वहाँ से उछलकर मेरे दिमाग में घुस गईं—और आज भी मेरे सिर में वे आँखें भटक रही हैं, खटखटा रही हैं—मेरे खोपड़े से बाहर निकलने को छटपटा रही हैं।

.....मैं उस विचित्र जीव को पटक कर भागा। पीछे से एक भयानक चीख सुनाई पड़ी "अवलाला ! मोर हस हा।"

पता नहीं कैसे घर पहुँचा—कई सप्ताह तक ज्वर में पड़ा रहा। स्वप्न में न जाने क्या-क्या देखता था। कभी अपने पिता के अनेक शरीरों को, कभी अनेक सर्पों को, कभी अनेकानेक अर्ध-सर्प-मनुष्यों को, जिनका मुख पिताजी का होता था—उन्हें जलते, भुनते, चिताओं में छटपटाते भस्म होते देखता था।

इसके बाद लगभग सात-आठ पन्ने गायब थे, फिर किसी पीतबोई[1] ने एक विचित लिखाई में लिखा था कि उसके यजमान पं० अवतारकृष्ण कौल नागपंचमी के सबेरे गाढ़कूचा की उस तंग अंधेरी गली में मरे हुए पाए गए। वे कब, क्यों, कैसे वहां

---

१. पीताम्बर नाम का पुरोहित। पुरोहित को 'बोइ' या 'बोय' कहते हैं।

पहुँचे थे, इसका वृत्तान्त बीच के लुप्त पन्नों में होने के कारण गायब था। केवल इतना पढ़ा जा सकता था कि पं० अवतार कृष्ण के पास एक खोस[1] और एक ताँबे के गंगज[2] में दूध पड़ा था।

———

१. काँसे का बिना हैण्डिल का प्याला।

२. छोटा-सा गंगासागर।

# श्री रमेश मेहता

रमेश मेहता जी जम्मू-व-कश्मीर की युवा-पीढ़ी के एक उभरते कलाकार हैं। कविता के अतिरिक्त आपने कई कहानियों का सृजन भी किया है। आधुनिक वैज्ञानिक युग की एक उपलब्धि नगर एवं महानगर की सभ्यता है। देखने में नगर तथा इसमें रहने वाले लोग सभ्य एवं संस्कृत लगते हैं किन्तु कहानीकार को लगता है कि नगर के प्रति आकर्षण एक छलावा है। 'अधूरी कहानी का हीरो' इस बात को प्रमाणित करती है। एक महानगर अथवा नगर में सब कुछ होता है—लोग, दुकानें, सड़कें, सुविधाएं, मनोरंजन के साधन, किन्तु चकाचौंध करने वाली रौशनी में नगर अरक्षा का प्रतीक बन गया है। मनुष्य नगर की भीड़ में अकेला, अजनबी, दिग्भ्रमित एवं अरक्षित महसूस करने लगता है। कहानी का एक स्थल—"कॉफी हाऊस का का शोर धीमा पड़ता जा रहा है। बाजार में एक-एक कर दुकानें बंद होने लगी हैं। डूबे हुए दिन की थकावट मेरी नसों में भर गई है। कच्ची छावनी के चौराहे से अपने घर की ओर जाने वाली सड़क पर मुड़ते ही मुझे अकेलेपन का अहसास दबोचने लगता है। मीनू से कहे गये मेरे अपने ही शब्दों का खोखलापन मेरा उपहास करने लगता है। इस शहर को एक बड़ा शहर मानने के अपने संतोष पर मुझे घृणा हो जाती है।"[1] 'एक मादा

---

१. दे० अधूरी कहानी का हीरो; पृ० ४।

प्रतिशोध' में नपुंसक विद्रोह को जन्म दिया गया है। परिस्थितियों के दबाव के कारण आज का व्यक्ति भावुक होकर विद्रोह नहीं करता बल्कि तटस्थता एवं बौद्धिकता की छींटों से भावुकता पर छिड़काव करता है।

कहानीकार के शिल्प में गढ़ना भी है, तराशना भी है। उनकी कहानियों में नाटकीयता का अनावश्यक स्नेह देखने को मिलता है जिससे कभी-कभी मेहता जी की कहानियों की संवेदना सतही-सी लगती है। वे बेखटके कहानी में संकेतों एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। आशा है कि वे भविष्य में सफल कहानीकार के रूप में अपना स्थान निर्धारित करेंगे।

———

# अधूरी कहानी का हीरो

"देखो रात को देर मत करना।"

"क्यों ?"

"मेरा जी घबराने लगता है।"

"इसमें जी घबराने की क्या बात है।"

इतना बड़ा शहर है। सारी रात सड़कों पर चहल-पहल रहती है और तुम हो कि अब भी डरती हो।"

"शहर के बड़े-छोटे होने से क्या हो जाता है, लोगों के मन तो नहीं बदल जाते ? जानते नहीं, अभी कल ही मुन्नी के पापा क्या सुना रहे थे ? बेचारे अशोक की किसी ने कितनी निर्दयता से हत्या कर दी थी ? और हां ! अभी कल ही तो शहर में चार जगहों पर चाकुओं ने अपने जौहर दिखाए हैं ! न बाबा न ! हमसे नहीं सहा जाता यह सब। वहाँ तो तुम स्वस्थचित्त मित्रों में बैठे कहकहे लगाते हो और यहाँ मेरा दिल डूब-डूब जाता है। हर आने वाली गाड़ी की आहट मुझे किसी अनिष्ट की कल्पना से भर जाती है।"

"तुम भी कमाल हो मीनू ! भला इस तरह डरने से भी कहीं दुनिया के काम चलते हैं ! और फिर लड़ाई-झगड़े तो दिन में भी होते हैं न।" मैं खुल कर हँस देता हूँ।

"फिर भी क्या तुम घर जल्दी नहीं लौट सकते··प्लीज।" उसकी आवाज में सलोनापन भर गया है। बाहर से असम्पृक्त बना मैं भीतर कहीं दहल जाता हूँ। अखबारों में छपने वाली सुर्खियां मेरा पीछा करने लगती हैं। अस्त-व्यस्त होने से बचने के लिए मैं एक हल्की सी 'बाय' उछाल कर गली में निकाल आता हूँ।

बाजार की चहल-पहल में पहुँचते ही हत्या, दंगा और चाकू मेरे लिए अर्थहीन हो जाते हैं। अपने को बाजार में चलती भीड़ का अंग मानने से मैं महसूस करने लगता हूँ कि मैं अभेद्य हूँ। कोई मुझे छू नहीं सकता, कोई मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

काफी हाउस का शोर धीमा पड़ता जा रहा है। बाजार में एक-एक कर दुकानें बन्द होने लगती हैं। डूबे हुए दिन की थकावट मेरी नसों में भर गई है। कच्ची छावनी के चौराहे से अपने घर की ओर जाने वाली सड़क पर मुड़ते ही मुझे अकेले-पन का अहसास दबोचने लगता है। मीनू से कहे गए मेरे अपने ही शब्दों का खोखलापन मेरा उपहास करने लगता है। इस शहर को एक बड़ा शहर मानने के अपने संतोष पर मुझे घृणा हो आती है।

यह भी कोई बड़ा शहर है! इसी को बड़ा शहर कहते हैं क्या? रात के कुल जमा ग्यारह बजे हैं और सड़कें सुनसान हो गई हैं। दूर तक किसी मनुष्य की छाया भी नहीं दिखाई देती। स्ट्रीट-लाइट का प्रकाश भी अभी से ऊँघने लग गया है। अशोक की हत्या का संदर्भ मुझे छा लेता है। मैं भीतर ही भीतर कहीं डर गया हूँ। कैसा सन्नाटा छाया हुआ है! एक मैं हूँ और एक

यह सड़क है या फिर इस सड़क के किनारे बुझी हुई बत्तियों वाले घरों में सोए लोग ! ऐसे में यदि कोई····!

मेरे आगे कुछ सोचने से पहले ही एक कंपकंपी मेरे सर से होती हुई पाँव तक मुझे पसीने से नहला देती है।

खटाक् !

स्ट्रीट लाइट बुझ जाती है। अन्धेरे में चलने के अभ्यस्त मेरे पाँव बढ़ते ही जाते हैं, परन्तु मेरा दिल डूबता जाता है। मुझे अनुमान होता है कि अभी किसी गली से निकल कर कोई गुण्डा एक तेज धार वाला चाकू मेरी पसलियों में घुसेड़ देगा या फिर अभी बिना बत्ती जलाए चलती हुई कोई गाड़ी मुझे अपने आलिंगन में लेती हुई बढ़ जाएगी। मैं अनुमान से सड़क के एक किनारे होकर चलने लगता हूँ। अपने-आपको फ़िल्मी गीतों की धुनों में खो देने की असफल चेष्टा करता हूँ।

अपने बेसुरे स्वर को ऊँची टोन पर उठाए हुए प्रेमिका से किए गए वादों को पूरा करने का विश्वास दिलाने लगता हूँ तो याद आता है कि मीनू को दिया हुआ वादा आज भी पूरा नहीं कर सकता हूँ। रोज की तरह आज भी देर हो गई है। मीनू आज भी जरा से खटके की आवाज पर "कौन····" का स्वर हवा में उछालती बैठी होगी। बड़ी भोली है, खाहमखाह डरती रहती है ! पुलिस की फ्लाइंग स्क्वैड की जीप तेजी से मेरे पास से निकल जाती है। मैं आश्वस्त हो जाता हूँ। अभी मुझे किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए। पुलिस मेरी पीठ पर है, मेरी सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। में सहज होकर चलने की चेष्टा करता हूँ। स्ट्रीट-लाइट मेरे घर तक जा कर लौट आई है। उजाले में मैं अपने को सुरक्षित अनुभव करता हूँ। मेरा ध्यान फिर मीनू की ओर चला जाता है।

कितनी अच्छी है मीनू, कितना ध्यान रखती है मेरा ! और एक मैं हूँ कि उसकी इतनी-सी बात····बात पर आकर मैं रुक जाता हूँ। दूर एक लैम्प-पोस्ट के नीचे एक साया मुझे इधर आता दिखाई देता है। उसके कदम लड़खड़ा रहे हैं। बेसुरे गले से वह सारी दुनिया से अनोखे रिश्ते जोड़ता चल रहा है। उसकी फाकामस्ती मुझे चौंका देती है। मेरे भीतर का भय फिर सतह पर उभरने लगता है। अखबारों में पढ़ी सुर्खियाँ फिर मेरी आँखों के सामने तैरने लगती हैं। शहर की दीवारों पर लगे फिल्मी पोस्टरों में से झाँकती लाशों के चेहरों में से मैं अपने लिए एक चेहरा तलाशने लगता हूँ। लोगों की बातों में एक और हत्या का विवरण जुड़ जाने का संदर्भ मुझे कमजोर बना देता है। मैं आत्मविश्लेषण की मनःस्थिति में आने लगता हूँ। मुझे अनुभव होता है कि मैं मौत से नहीं डरता। मैं देर तक बिस्तर पर पड़े-पड़े चाकू के या अन्य जख्मों की पीड़ा सहने से डरता हूँ। हर आने-जाने वाली की दृष्टि में सहानुभूति का पात्र बनने से मुझे घृणा है और फिर मीनू। मीनू का क्या होगा ? यही प्रश्न मुझे कमजोर कर जाता है। सारी शंकाएँ मिल कर मुझे दिग्भ्रान्त कर देती हैं। एक बेसुरा स्वर, दौड़ते हुए कदमों की पदचाप, लाल-लाल आँखों की तेजी, खुले हुए चाकू की चमक—सब मुझे अपना पीछा-सा करते हुए लगते हैं और मैं बेतहाशा भाग उठता हूँ। कुत्तों के भौंकने का स्वर मेरे कदमों को और अधिक तेज भागने की शक्ति प्रदान करता है। चाकू, मुक्के, स्वर सब मुझे समीप पहुँचते अनुभव होने लगते हैं। मैं दम छोड़ कर भागने लगता हूँ। कालबेल का शोर मुझे ढाढ़स बंधाता प्रतीत होता है। मीनू की आवाज सुन कर मैं अपने में लौट आता हूँ। मेरा साहस फिर से मेरा हाथ पकड़ लेता है। मैं दूर-दूर तक—जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है—एक खुले हुए चाकू, एक उठे हुए

थप्पड़ या फिर होठों पर रुकी एक गाली की तलाश करता हूँ परन्तु सब ओर सुनसान है। केवल स्ट्रीट-लाइट का अलसाया प्रकाश है और मीनू फटी-फटी आँखों से अवाक् मुझे देखती रहती है। तो तो क्या मैं··खुले चाकू एक बार फिर मेरी चेतना को छा लेते हैं। मुझे लगता है कि अब की बार इन चाकुओं से बचना नहीं हो सकता। मीनू की उपस्थिति भी मुझे धैर्य नहीं बँधा पा रही है। घर की चारों दीवारें मुझे घूरती हुई प्रतीत होती हैं। धीरे-धीरे मेरे मानस-पटल पर आज दिन में अपने कार्यालय में हुई झड़प का दृश्य उभरता है। लाल लाल आँखों द्वारा उछाली गई धमकी एक बार फिर मेरे गले का फँदा-बन जाती है। गली में दौड़ते हुए कदमों का शोर बढ़ने लगता है। मेरे हृदय के एक कोने में दर्द की लहरियां उभरती हैं और तीव्रतर होती जाती हैं। मैं फिल्मी पोज़ में छटपटाने लगा हूँ। मीनू मुझे सहारा देने के लिए आगे बढ़ती है, पर मैं उसे धकेल देता हूँ। मुझे लगता है कि यदि उसने मेरा साथ न छोड़ा तो ये लोग उसे भी चाकू मार देंगे। लाल-लाल आंखों वाले ये लोग किसी को नहीं छोड़ेंगे। खुले चाकू की संस्कृति हमें जिन्दा नहीं रहने देगी। जिन्दगी के इन अंतिम क्षणों में पहली बार मुझे संतोष का अनुभव होता है कि अच्छा ही हुआ जो मेरे घर में बच्चे न हुए अन्यथा मरने की यातना और भी बढ़ जाती। मैं मर रहा हूँ, चाकू मेरी चेतना से होता हुआ मेरी पसलियों को छू कर मेरे हृदय में चुभ रहा है, मेरा सारा शरीर पसीने से सराबोर हो गया है। चेतना धुंधली पड़ती जा रही है और मैं····हाँ! मैं अब इस कहानी को कहने की शक्ति खोने लगा हूँ। नहीं, नहीं, यह कहानी अधूरी नहीं रह सकती। मुझे कहानी पूरी करनी ही होगी। पर नहीं, मैं कहानी कैसे

पूरी कर सकता हूँ ? मेरी चेतना मेरा साथ छोड़ रही है। मेरी वाक्शक्ति समाप्त हो रही है। मेरा अन्तस यह कह रहा है कि आज तक एक अधूरी जिन्दगी को ढोने वाले तुम इस कहानी को पूरा कैसे कर सकते हो ? यह अपने से अन्याय है, यह नितान्त असम्भव है। मरना मेरी नियति है और मैं मर रहा हूँ। फिर इस से क्या फर्क पड़ता है कि मैं किन परिस्थितियों में मर रहा हूँ। मस्तिष्क की नसें और अधिक तीव्रता से चटखने लगी हैं। अब नहीं बोला जाता·····

मुझे महसूस होने लगा है कि कुत्ते भागते-भागते अनायास रुक गए हैं। उनके भौंकने का स्वर थम गया है····मीनू की आवाज भी दूर होती जा रही है। मैं अपने परिवेश से कटता चला जा रहा हूँ·····बिल्कुल असम्पृक्त, नितांत अचेतन !

———

# श्रीमती बदरुन्निसा

श्रीमती बदरुन्निसा को जम्मू-व-कश्मीर के उभरते कहानीकारों में एक प्रमुख स्थान प्राप्त है। उनकी कहानियों का धरातल अपने चारों ओर का परिवेश है। अपनी कहानियों में उन्होंने निम्न-मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की विवशताओं को बहुत ही बारीकियों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। बदरुन्निसाजी व्यष्टि तथा समष्टि दोनों की लेखिका हैं। व्यष्टि के माध्यम से उन्होंने समष्टि के व्यापक सत्यों की ओर संकेत किये हैं। अतः उनकी कहानी किसी व्यक्ति-विशेष की कहानी न रहकर समष्टि के दुःख-दर्द की कहानी बन जाती है। फिर भी व्यक्ति का निजी अस्तित्व उनकी कहानियों में सुरक्षित रहता है।

लेखिका के पात्र प्रायः आर्थिक विषमता के भार से ग्रस्त दिखाई देते हैं। आर्थिक मजबूरियों के कारण वे मुखौटा पहन कर सब कुछ सहने के लिए तैयार हो जाते हैं। 'एक राही दो रास्ते' नामक कहानी की मूल संवेदना यही है कि कहानी की मुख्य पात्र सुनीता अपने पितृ-तुल्य बॉस खन्ना से प्रेम करती सी दिखाई देती है। वास्तव में आर्थिक दवाव के कारण मुस्कराहट का कफन ओढ़कर उसे यह सब कुछ करना पड़ रहा है। कहानी-लेखिका ने उसकी विवशताओं का चित्रण निम्नलिखित

पंक्तियों में इस प्रकार किया है :—वह दरवाजे के पास कहीं देखती रही और देखते-देखते विचारों की दुनिया में खो गई—"क्या अनिल की नौकरी लग जाएगी ? खन्ना जरूर कहीं-न-कहीं लगा देगा।" पापा जी की मौत के बाद घर का हाल ही खराब हो गया है। वह सोचने लगी—"लेकिन दिनेश का क्या होगा ? दिनेश उसके सपनों का साथी। वे दोनों बी० ए० में क्लास फैलो थे ? तभी से प्यार कर रहे हैं एक-दूसरे को। लेकिन यह बुड्ढा खन्ना ? उफ !"

इसी प्रकार 'कबूल किया मैंने' नामक कहानी में घुट-घुट कर जीने वाली एक लड़की का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस घुटन के कारण निम्न-मध्यवर्ग में व्याप्त आर्थिक विवशताएं तथा आरोपित प्रतिष्ठा एवं मान-मर्यादा हैं। इस प्रकार कहानी का स्वर व्यंग्यात्मक है। 'अगरबत्तियों की खुशबू' में कुछ देर के लिए निम्न-मध्यवर्ग का घिनौना वातावरण भले ही सुगन्धित किया जाय किन्तु यह मूलतः दूषित है। पेट की अग्नि के बाद वासना की भूख इस माहौल पर इतनी हावी होती दिखाई गई है कि मनुष्य पस्ती के हाल में टूटता ही जाता है।

श्रीमती बदरुन्निसा का कहानी-शिल्प के प्रति कोई आग्रह नहीं है। वे सपाट तथा सीधे शब्दों में कहानी कहती हैं, आरोपित शिल्प से कहानी को गढ़ती नहीं हैं। लेखिका की भाषा सच्चाई तथा असलियत की भाषा है—जिन्दगी के सम्पर्क की भाषा। शिल्प जिसे कहते हैं, उसे कहीं देखा नहीं जाता, अनुभव किया जाता है—यह कथन बदरुन्निसा जी की कहानियों के बारे में अक्षरशः सत्य है। निस्सन्देह कहानी की दिशा में उनका भविष्य उज्ज्वल है।

———

# कबूल किया मैंने

खाना अभी खत्म भी नहीं हो पाया था कि औरतों में कुछ खलबली मच गई, निकाह की इजाजत लेने आ रहे हैं। नई नवेली दुल्हनों ने घूँघट निकाल लिए और जवान लड़कियां जरा दूर हट कर मुँह फेर के बैठ गईं। मैंने अभी-अभी खाना खत्म किया है। सितारा, महरुन्निसा और नजमी आज ही बिहार से आई हैं। इन्हीं लोगों के साथ खाना खाते-खाते इतनी बातों में मैं खो गई। खयाल ही नहीं रहा कि आज रात और वह भी इसी वक्त निकाह होने वाला है। मैं कुछ तैयारी करके बैठती। जरा संजीदा मुँह बना के।

सईदा खाला ने अपना टेपरिकार्डर खोल दिया—"अरे निम्मी, अभी तक ऐसे ही बैठी है? निकाह का जोड़ा भी नहीं पहनाया? लड़कियों को हँसी-मजाक से फुर्सत मिले तब न।"

सफिया कहने लगी—"खाला, जोड़ा है कहां, जो हम पहनाते?" नियाजी आपा जरा कुलबुलाई और जुबैदा से अटैची मंगवा के उसमें से निकाह का जोड़ा, कमरबन्द, चुटीली, लाल रूमाल और कुछ सिंगार का सामान निकाला। सईदा खाला को मौका मिल गया। पान के पत्ते पर थोड़ा-सा चूना लगाकर मुँह में ठोंस लिया और बड़बड़ाने लगीं—"अरी लड़कियों, मुँह क्या देख रही हो? इस सामान में से लेकर जल्दी से लाल दुपट्टा

ही ओढ़ा दो । अरे, नियाजी बहन, बुरा मत मानना, कुंआरी लड़की का निकाह है। दुपट्टे में दो रुपये का कच्चा गोटा ही लगा दिया होता ! मुन्शा कितना बुरा लग रहा है। सोटा-सा।" और मुंह बिचका लिया।

निकाह की इजाजत लेने वालों को अभी अन्दर आने की इजाजत ही नहीं मिली। वे बेचारे सहन में खड़े अन्दर आने की इजाजत मांग रहे थे। इतने में नसीरुद्दीन मामू आये और इजाजत लेने वालों को इजाजत मिल गई। औरतों में सुप-सुप करके रोने की आवाजें आने लगीं। वकील साहब की आवाज भी थर्राने लगी,। "बेटी ! इजाजत दे दो।" अम्मी ने कान के पास मुंह करके कहा।

वकील साहब और गवाह तो आँखों में आंसू लिए लौट गये। मैं बराबर रोये जा रही थी। औरतें समझ रही थीं— "हर लड़की की जिन्दगी में यह दिन आता है। हर लड़की को पराया होना पड़ता है।"

सलमा-बाजी किसी-न-किसी बहाने रोती रही हैं। रशीदा बाजी मेरे लिए प्याजी रंग का कितना प्यारा जोड़ा बनाके लाई थीं। गरारे और दुपट्टे को सुनहरे गोटे और लचके से किस नफासत के साथ सजाया था। मेरे सामने रखकर कहा था— "निम्मी, पसंद है तुझे ? तेरे दुल्ला भाई ने तेरी पसंद का खयाल रखकर यह रंग चुना था"। मेरे चेहरे पर यकायक मसर्रत की लहर दौड़ने लगी थी। तभी सलमा बाजी आईं और झपट के जोड़ा उठा लिया और रोने लगीं। जैसे ही अम्मी को कमरे में आते देखा तो बयान करना शुरू कर दिया—"मैं खास बहन होकर के कुछ नहीं दे रही तो इनको क्या हक है ? यह तो खालाज़ाद बहन हैं। अम्मी ने कितना नाजाईज़ किया कि

रशीदा बाजी का जोड़ा वापस कर दिया यह कहते हुए कि हमारी बेटी रो-रो-कर परेशान हो रही है। रशीदा बाजीको गुस्सा आ गया था। उन्होंने अपने मियाँ का नाम लेकर कह दिया कि वही लाये हैं। वापस करना है उन्हीं को करो। तभी अम्मी ने एक बच्चे को भेजकर उनके मियाँ को बुलवाया और माफी मांग ली। वह बेचारे सिर झुका कर वापस चले गये थे। सलमा बाजी की जीत रही।

यूँ तो चार-पाँच-दिन से मेहमानों की गहमा-गहमी है। रहमान ताया अभी-अभी अपनी पूरी फैमिली के साथ आये हैं। ताया मियाँ और अब्बा में न जाने क्यों मनमुटाव हो जाता है। बड़ी मुश्किल से वह शादी में शरीक होने के लिए आये हैं। आज पूरा दोपहर उनको अम्मी ने मनाया था। ताई को देखते ही सब खुश हो गये थे।

जब मेरे आखिरी उबटन लगाया जा रहा था, रस्म के मुताबिक दोनों हाथों में मिठाई लेकर मैं सहन से कमरे में जा रही थी। बड़े मामू कमरे से आते हुए मिल गये। एक हल्की-सी मुस्कराहट बटोर कर मैंने मिठाई से भरे हुए हाथ मामू की तरफ कर दिये थे। मामू ने खुश होकर अमरती का जरा-सा टुकड़ा मुँह में डालकर कहा था—"मैं अभी तेरे लिए बढ़िया-सी मिठाई लाता हूँ।" यह सुन कर सलमा बाजी ने बड़बड़ाना शुरू कर दिया था—"मेरी भी शादी हुई थी। तब मामू मिठाई नहीं लाये। अब इसके लिए लायेंगे····!"

यकायक मैं चौंक गई। बड़े मामू ने मिठाई का लिफाफा अब मेरे सामने कर दिया था। मैंने उसी उधार ली हुई-सी मुस्कराहट को फिर से एक बार होठों पर चिपका लिया था। रात को आँखें बन्द किये हुए लेटी थी और मेरे कान खुले हुए

थे। सलमा बाजी छोटे चाचा को शामिल करके हँस-हँस कर वही मिठाई खा रही थी।

सुबह मौसम बहुत साफ था। मैं खिड़की के पास बैठी नीचे आंगन में बैठे हुए मेहमानों का तमाशा देख रही थी। बड़ी फूफी जान एक-एक औरत को अपने साथ अन्दर ले जाती और कुलियों में से कुछ मिठाई, बेकरी निकाल के दे देती और हर एक को ताकीद कर देती कि किसी को कहना मत। चुपचाप अपने बच्चों को खिला दो।

खूब रिवाज है इनका, कि कुलियों में मिठाई छिपा कर के रखी जाती है। मुझे जमीला की बात याद आ गई। उसकी सास उसको पेट भरकर के खाना नहीं देती थी। उसकी जेठानी ने उसे तरकीब बताई कि भण्डार के कोने में एक कुलिया में रोटी छिपा दिया कर। जब मौका मिले, चुपचाप जाकर खा आया कर। बेचारी रोज उसी कुलिया में से रोटी निकाल के खा लेती थी। एक दिन काफी देर हो गई। जमीला भंडार घर से वापस नहीं आई तो सास ने पूछा, जमीला कहाँ है। थोड़ी देर में सब भंडार में पहुँचे तो देखा कि जमीला बेहोश पड़ी है और उसके हाथ में रोटियां दबी हुई हैं। पेशानी से बेतहाशा खून बह रहा था। दीवार की कील अंधेरे की वजह से दिखाई नहीं दी थी।

मैं बैठी हुई सोचने लगी, आज मेरी बारात आने वाली है। और एक खास कील की तरह मेरे दिमाग में चुभने लगी थी। तभी मैंने बाजी को यह कहते हुए सुना :

"यह सोफासैट इसे क्यों दिया जा रहा है ? यह गुलदान इसको क्यों दे रही हो ? यह नाना की निशानी अपने पास रखो। इतने जोड़े देने की क्या जरूरत है ? कुछ जोड़े निकाल लो। आने-जाने में देने हैं। उस वक्त पैसा खर्च करना पड़ेगा।"

तभी मैं अपने वजूद से दूर बाजी में चली गई। गर्मियों में बाजी की सहेली की शादी थी। उन लोगों ने हम दोनों बहनों को बुलाया था। बाजी की शादी के बहुत जोड़े ऐसे थे जो बिल्कुल नये थे। इसके बावजूद अम्मी ने सन्दूक से एक सूट का कपड़ा निकाल कर मुझे दिया था, "यह जोड़ा सी दे सलमा के लिए; कल शादी में जाना है।" पूरे दिन बैठ मैंने जोड़ा सिया था। उस दिन की कालिज से छुट्टी भी लेनी पड़ी थी। रात में बैठकर दुपट्टे में गोटा टांका था। उसके बाद बाकी रात मैं रोती रही थी। उस रात मैंने बाजी को कितना कोसा था, कि मैं शादी में नहीं जाऊँगी। सुबह उठकर कालिज जाने की तैयारी की। तांगा आया और मैं बैठ गई। तांगा चला जा रहा था। एकाएक तांगा रुका तो मेरे सोचने का तांता टूटा। मुदस्सर के घर चली गई। वह दरवाजे से बाहर आ रही थी। मुझे आता देखकर उसे ताज्जुब हुआ। मैंने उसे बताया कि मुझसे गलती हो गई। मुझे बाजी का पुछल्ला बनके उनकी सहेली की शादी में जाना था।

न जाने क्यों मेरे ऊपर बगावत का भूत सवार हो गया था। अब मुझे फिर वापस घर जाना है। सोचा, दो मिनट तेरे घर रुक जाऊंगी। तभी मुदस्सर ने ताँगे वाले से कह दिया कि आज हम दोनों ने बावर्चीखाने में बैठकर चाय पी। बीवी आपा गरम-गरम पराठे सेंक कर दे रही थी। मुदस्सर के घर में मुझे अपनापन लगता था। बहुत सकून मिलता था। उसकी तीनों बहनें मुझे अपनी छोटी बहन समझती थीं। बहुत प्यार देती थीं। कुछ देर में अपने को ताजा महसूस करने लगी। उसके घर से जाने की तबीयत नहीं हो रही थी। लेकिन घर लौटना जरूरी था। बाजी ने मुझे देखा और तेजिया मुस्करा गई। उन्हें मुझ से शायद यही उम्मीद थी। अकड़ में चली तो गई है; लौट कर

वापस आयेगी। अब्बा मुझे देख घर से बाहर चले गये। वापस आये तो मैं खुशी से फूली नहीं समा रही थी। अब्बा को मेरे ऊपर तरस आ गया है। मेरे पास शादी में पहनने के काबिल जूते नहीं थे। वही लेकर आ रहे हैं। ख्वाहम-ख्वाह मैं इतनी नाराज हो गई थी। बाजी उनकी बेटी है, तो मैं भी तो उनकी बेटी हूँ।

अब्बा जब कमरे में आये तो उनके हाथ खाली थे। कुछ रुपये निकाल कर बाजी को देते हुए कहा था—तुम्हारी सहेली की शादी में देने के लिए कर्ज लेकर आया हूँ। सुबह से देख रहा था बिक्री हो तो कुछ रुपये हाथ में आयें। लेकिन आज एक पैसे की बिक्री नहीं हुई। मैं मायूस हो गई थी और छोटे भाई को भेज कर अपनी सहेली शमा के सैंडिल मंगवाये थे, शादी में पहनने के लिए।

शादी के घर में जाकर बाजी ने मुझे दुल्हन के पास बिठा दिया, जो बेचारी खुद मुँह फेरे घूंघट डाले बैठी थी। बाकी सारी लड़कियाँ और बाजी दूसरे घर में चली गईं, जहाँ बरातियों के लिए नाश्ते की प्लेटें लगाई जा रही थीं। वहाँ इन्होंने खूब मिठाई खाई होगी।

दोपहर का खाना सब अपने-अपने वक्त पर खाते हैं। कोई कभी घर में आता है, कोई कभी। छोटे भाई-बहन स्कूल से देर से आते थे। मैं जल्दी आ जाती थी। गर्मियों में घर आते-आते पसीना बहने लगता था। जल्दी से किताबें अलमारी में पटक के बुर्का उतारती थी। तभी बाजी मुस्कराती आती थी और कटोरदान में से नीचे से पसीजी दो रोटियां मेरे सामने रख देती थी। यह देखकर मेरी आँखों में आँसू आ जाते। लेकिन मुझे मालूम था कि इस घर में आँसू बहाना मना है। फौरन आँसू पी जाती। अगर अम्मी ने देख लिया रोते हुए तो हजारों

गालियाँ-कोसे सुनने पड़ेंगे। बचपन से ही अम्मी से दूर रहने में बहुत खुश रहती थी। रिश्तेदारों में जाना, उनके साथ रहना मुझे अच्छा लगता था। बाजी की अम्मी से बहुत चिपक थी। शाम को अक्सर पूरी फैमिली नाना के घर जाती। बड़ी उम्र के लोग बातें करते रहते। इस तरह काफी रात हो जाती थी। हम बच्चे सो जाते थे। चलते वक्त मामू-मुमानी अम्मी से कहते—आपा सलमा को जगाके अपने साथ ले जाओ। यह रात को जाग जाती है तो अम्मी-अम्मी कहके रोने लगती है। मम्मी को छोड़ जाओ। जब सुबह मैं जागती तो मुझे बड़ी मुमानी प्यार के साथ गोद में उठा लेतीं, मुँह धुलातीं। मेरे जागने से पहले ही मेरे लिए मामू मिठाई लाकर के रख देते। मुमानी फिर मुझे चारपाई पर बिठा देती। मैं मिठाई खाते-खाते मामू-मुमानी का प्यार पाती।

बाजी अपनी शादी के बाद दो या तीन बार ससुराल गई होंगी कि एक बार दूल्ला भाई यहाँ आये और फिर वापस नहीं गये। दूसरे कमरे में बाजी न जाने कितनी बातें गुपचुप करती रही थीं।

बाजी की सास हद से ज्यादा सीधी थीं। ससुर आशिक-मिजाज थे। सुबह नाश्ता करते तो आधा नाश्ता बचाकर वापस कर देते यह कहकर कि यह सलमा के लिए है। बाजी मायके में रहने लगीं तो ससुर जी यहाँ के भी चक्कर काटने लगे। हर आठवें दिन आ जाते। ससुर-बहू में खुसर-फुसर बातें होतीं। एक दिन बाजी ने उनकी सारी हरकतों का कच्चा चिट्ठा मियाँ को बता दिया। हफ्ते के दिन ससुर आये तो बाजी ने मियां के हाथों ससुर को पकड़वा दिया। रिश्ते-नाते में बहुत बदनामी हुई।

मेरे चारों तरफ बाजी की सहेलियाँ बैठी हैं। आज भी मेरी अपनी सहेली नहीं बुलाई गई। शमा-मुदस्सर क्या सोचती होंगी ? वे शायद लगातर इंतजार करती रही होंगी, कोई बुलाने आये। एक महीने पहले असलम के घर के लोग शादी की तारीख तै करने आये थे। उनके जाने के बाद मुझे रोना आ गया था यह सोचकर कि आखिर आज इस कैदखाने से रिहाई की तारीख तै हो गई, जिसका मैं बरसों से इंतजार कर रही थी। अम्मी और अब्बा ने मुझे रोते देखा तो यही कहा था: हर लड़की को मायके का घर छोड़ना पड़ता है और छोड़ने पर दुःख तो होता ही है। उस दिन अम्मी की आँखों में आँसू आ गये थे और उनकी इन्सानियत की लकीर उभर आई थी। कहा था: "मैंने तेरे साथ कभी इन्साफ नहीं किया था। हमेशा सलमा का फेवर किया। तू क्या याद करेगी अपने मायके को।"

तभी मुझे याद आ गया कि बाजी ने एक दिन अम्मी से यहाँ तक कह दिया था कि वह कह रहे हैं कि तुम मुझे तलाक दे दो और किसी असलम जैसे काबिल लड़के के साथ शादी कर लो··तभी अम्मी ने कहा था—"काश ! किस्मत एक सितारा होती तो उसकी पेशानी से छुड़ाके तेरी पेशानी पर लगा देती, लेकिन किस्मत एक सितारा न हुआ !"

तभी यकायक मेरे मुँह से निकला—"कबूल किया मैंने।" पास बैठी हुई आँखें चौंककर मेरी तरफ देखने लगीं और मुझे सचमुच बड़ी झेंप महसूस हुई, क्योंकि यह आवाज मेरे लाशऊर की थी, जो खुशी के सारे माहौल की खुशबू को जज्ब कर चुका था।

———

# डॉ० सोमनाथ कौल

डॉ० सोमनाथ कौल कश्मीर के उभरते कहानीकारों में अग्रगण्य हैं। उनका स्वर प्रायः अद्यतन है। कविताओं की तरह उनकी कहानियों में भी आधुनिक युग-बोध तथा नागरिकता का बोध यांत्रिक प्रभाव के साथ उभर कर आया है। वे अपनी दृष्टि में सर्वत्र एक रचना-प्रक्रिया की तलाश करते दिखाई देते हैं। यह रचना-धर्मिता युगानुकूल परिस्थितियों के परिसर में मूल्यांकित की जा सकती है।

डॉ० कौल व्यष्टि तथा समष्टि दोनों के कलाकार हैं। वे कभी समष्टि के माध्यम से व्यष्टि के दुःख-दर्द से साक्षात्कार कराते हैं तो कभी व्यष्टि के माध्यम से आज के मानव की विसंगतियों, जीवन-यात्रा में वैफल्य, एकाकीपन एवं तज्जनित कुंठा का अहसास कराते हैं। लेखक का विश्वास है कि आज के यंत्र युग ने मनुष्य को मनुष्य नहीं, एक यंत्र बन जाने के लिये अभिशप्त बना दिया है। विभिन्न परिस्थितियों के दबाव के कारण उसकी सारी संवेदनाएँ दब गई हैं और शेष रह गया है—मनुष्य रूपी चलता-फिरता यंत्र। यह यंत्र किसी प्रकार की रियायत नहीं चाहता है। वह केवल अब काम का अनुरोध करता है क्योंकि रात-दिन काम करना ही उसका जन्मसिद्ध अधिकार-सा हो गया है। यदि यह अधिकार उससे छिन

जाता है (अस्थायी तौर पर ही सही) तो वह अपने दैनिक फार्मूलाबद्ध जीवन में आने के लिए अजीब-सी छटपटाहट महसूसने लगता है। इस संदर्भ में लेखक की 'एक घंटे सड़क की नियति' की ये पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—'वह उन लोगों में है जो मोम की तरह पिघलने के आदी हैं और इसी तरह पिघलना अपना बुनियादी अधिकार समझते हैं। जीवन में कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब यह प्रक्रिया कुछ देर के लिए रुकती है या रोकनी पड़ती है, तब उसे अनुभव होता है कि उसके जीवन का कुछ महत्वपूर्ण उससे छीना जा रहा है और उसको प्राप्त करने वह पुनः छटपटाने-तिलमिलाने लगता है।'[१]

कहानीकार का विश्वास है कि ईमानदारी से रात-दिन काम करने पर आदमी में चाहे आत्म-विश्वास बढ़ जाय, वह इत्मीनान और चैन से जीवन व्यतीत करे पर वह कोई धनवान नहीं हो सकता। कारण यह है कि ईमानदारी से कमाकर रोटी खाना बहुत कठिन है। कहानीकार की एक चर्चित कहानी 'बाढ़ : सर से ऊपर' का मुख्य पात्र सुबह से रात गये तक मेहनत तो करता है किन्तु वह यह तय नहीं कर पाता कि उससे कम आमदनी वाले तथा कम वेतन पाने वाले लोग ये बड़ी-बड़ी कोठियां तथा मोटरें कहां से लाते हैं। कहानी का यह पात्र अपने को अस्तित्वहीन तथा जिन्दगी की भीड़ में दिग्भ्रान्त-सा महसूस करने लगता है। उसकी सारी कल्पनाएँ उच्च धरातल से गिरकर मोहभंग की स्थिति में बिखर जाती हैं। कहानी यांत्रिकता के दबाव में पीड़ित मनुष्य के विवश रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। एक और अन्य कहानी में कहानीकार ने आज के पति-पत्नी के तटस्थ रिश्तों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने

---

१. नीलजा—४, पृ० ८४।

की कोशिश की है। कहानीकार का विश्वास है कि आधुनिक तथाकथित शिष्ट पति-पत्नी के रिश्ते सूखे चिनार के पत्ते के समान हो गये हैं। यदि वे सम्भल कर नहीं चल पाते हैं तो क्षणों में उनका दाम्पत्य-जीवन सूखे पत्ते के समान ही चूर-चूर हो सकता है।

डॉ० कौल किसी भी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं। उनकी कहानी में एकसूत्रता दिखाई देती है। वे कहानी के अभीष्ट प्रभाव को तीव्र करने के लिये प्रतीकों, संकेतों, फ्लैश-बैक का प्रयोग बेखटके करते हैं। कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में अस्तित्व-वादी प्रभाव के संकेत भी देखने को मिलते हैं। अपनी सीमाओं के होते हुए भी डॉ० सोमनाथ कौल का हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भविष्य उज्ज्वल है।

———

# एक घंटे लम्बी सड़क की नियति

वह उन लोगों में है जो मोम की तरह पिघलने के आदी हैं और इसी तरह पिघलना अपना बुनियादी अधिकार समझते हैं। जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब यह प्रक्रिया कुछ देर के लिये रुकती है या रोकनी पड़ती है, तब उसे अनुभव होता है कि उसके जीवन का कुछ महत्त्वपूर्ण उससे छीना जा रहा है और उसको प्राप्त करने वह पुनः छटपटाने-तिलमिलाने लगता है।

शायद इसी कारण दफ्तर से उस रोज आधे दिन की सवेरे छूट मिलने पर भी वह अपने इसी 'कुछ' की रक्षा करने के लिये या इसे छीने जाने का अहसास भूलने के लिये मामूल से ज्यादा अपनी टाइप-राइटर पर टिक····टिकटिक····टिकटिक-टिक····करने लगा।

—बाबूजी, दूसरे लोग यहां से कब के चले गये। चपरासी के इस कथन ने उसे चौंकाया।

—ओह ! ····ओह हो!! ····हमें मालूम तक नहीं। तब हम तुम्हें यों ही इंतजार में रखते हैं। वह बोलते समय इतना अस्वाभाविक बना मानो रंगे हाथों चोरी करते पकड़ा गया हो।

वही रास्ता जिस पर चलते-चलते उसके पैर छिल गये, काले घुँघराले बाल गंगा-यमुनी हो गये, आज उसे अजनबी-सा लगने

लगा। वही चिर-परिचित मार्ग,वही दुकानें, स्थान-स्थान पर इसके मोड़·····आंखें मूँदकर भी वह इस पर चल सकता है और ठीक अपने घर से दफ्तर जा सकता है और उसी सुगमता के साथ लौट भी सकता है। घर से सवेरे चलकर प्रायः मन-ही-मन वह इन वाक्यों की रट-सी लगाता है—यहाँ पहुँचा, वहाँ पहुँचा····आगे यह मोड़ है····यह मोड़ है····फलां जगह फलां मोड़ पर मामूल की तरह फलां व्यक्ति मिलेगा····दफ्तर पहुँचकर फलां काम पहले करना होगा·· परसों वाली चिट्ठी ट्रेस करनी होगी···परसों 'पे-डे' होगा····। इस तरह दफ्तर से घर जाने की यात्रा या चार बजे के बाद दूसरे काम में लग जाने से पूर्व की यात्रा प्रायः इसी प्रकार बीत जाती। मगर आज उसका अपना देश अस्त-व्यस्त है।

वह प्रायः सवेरे उठता है। नहा धोकर अपनी यात्रा के लिये तैयार हो जाता है। लगभग वह नौ बजे घर से चलता है। अपनी चिर-परिचित राह पर उसको अपने देश के चिर-परिचित यात्री मिलते हैं····पर इस समय वे लोग कहाँ हैं जो सुबह-शाम उसे रोज मिलते हैं ?····जो गाड़ी पकड़ते हैं, सवेरे-सवेरे सुसज्जित होकर जोंक-दर-जोंक सड़क पर मसों की तरह उभरने वाले वे लोग कहाँ हैं ?····किस अज्ञात सहस्रवासुकी की जठराग्नि शांत करने के लिए ये लोग हांफते-दौड़ते जा रहे हैं, जो बिना कोई आव या ताव देखे इन सबको बेरहमी से निगलता रहता है और शाम को उन्हें एक-एक करके अधमरा-सा छोड़ता है ! ····आज उसे सवेरे क्यों छोड़ा गया····।

इस कल्पना से अकेलेपन का अहसास उसमें गहमाने लगा। मध्याह्न का सूर्य उस समय तेजी से चमक रहा था। उसे लगा

कि उसका अपना प्रतिबिम्ब भी कहीं लुप्त हो गया है। उसके हिसाब से सूर्य की दो ही स्थितियाँ हैं—एक जब वह घर से प्रातः चलता है और दूसरी जब वह चार बजे के बाद सूर्य पश्चिम की ओर होता है। मध्याह्न का अपरिचित सूर्य, सड़क, मोड़, मकान, दुकानें, अपरिचित राहगीर··· मानो उसको भटका अजनबी यात्री समझकर उस पर मौन अट्टहास कर रहे हैं। विसंगति का अहसास उसमें गहमाने लगा और उसे लगा कि उसका निजी अकेलापन भी उसके अधिकार से तरल पदार्थ की तरह फिसल रहा है····और अचानक वह दिन उसके सामने आने लगा····

—हैलो !

—हैलो ! मैं हूँ, राकेश !

—मौसी मृतप्राय है !

—क्यों !! क्या बात है ?····

—उसकी तबीयत एकदम बिगड़ गई है। तुम्हें बुलाती है।

फोन छूटने के साथ ही उसके सगे-सम्बधियों का संसार भी छूट गया था। उस रोज दफ्तरी उलझनों तथा फाइलों के भार ने उसको इस तरह व्यस्त रखा था कि रात को घर जाने पर भी उसे फोन का तनिक खयाल भी नहीं रहा था। उसके तुरन्त बाद मौसी चल भी बसी थी, किन्तु दफ्तर की व्यवस्थाओं के कारण या किसी अन्य कारण (?) से वह वहाँ नहीं जा पाया था। उन दिनों उसके दफ्तर में 'एंटी कोरपशन' केस की जाँच हो रही थी, जिसमें वह बुरी तरह उलझ गया था। वहाँ से लौटने के बाद उसकी मौसी का 'डैथ केस' कभी का फाइल हो चुका था, ठीक उसके एंटी-कोरपशन की तरह····

उस दिन एक घंटे का यह सफर उसके लिए सचमुच समस्या बनकर आया। चार बजने में अभी साढ़े-तीन घंटे शेष थे। इसके बाद वह एक प्राइवेट फर्म में पार्ट-टाइम जॉब करने जाता है। वहाँ से लगभग उसे नौ बजे छूट मिलती है। उसके बाद दो-एक ट्यूशनें करके ग्यारह के लगभग वह घर पहुँचता है। इस प्रकार कागजी नोटों का हल्का ढेर-सा लाकर उसकी भूखी जेबें उसको बेरहमी से ग्रस लेती हैं। बाद में कुछ समय के लिए एक रूमानी खुमार उसको इतना निश्चिन्त बनाता है जैसे कोई भूखी गाय तिनके को चबाकर .बाद में निश्चिन्त होकर मजे में जुगाली ले रही हो··। उसे विचार आया कि चलो यह भी अच्छा हुआ। आज बहुत देर के बाद वह अपने आपसे मिलेगा घर में···· माता-पिता का स्नेह-आशीर्वाद पायेगा। कम-से-कम वह पत्नी से कहेगा मैं इतना श्रम जो करता हूँ, बस डार्लिंग तुम्हारे लिए। मेरे प्राणनाथ !

—मेरा नटखट मुन्ना कहां है··कहाँ है तुम्हारी मुन्नी।·· डार्लिंग, जरा इधर आओ····हाँ, इधर, मेरे पास····। कुछ देर के लिए शून्य में उड़कर वह पुनः चिर-परिचित वातावरण से जुड़ा मानो उफनते झाग पर किसी ने ठंडी छींटों का छिड़-काव किया हो। वह नहीं जानता कि बच्चे क्या होते हैं, उन्हें कैसे प्यार किया जाता है। पत्नी प्रायः उससे नाराज रहती है किन्तु वह नहीं जानता कि रूठने पर उसे कैसे मनाया जाय। वह माता-पिता से मिलता है, रविवार को और विशेषकर 'पे डे' के रोज। वह बच्चों से मिलता है, छुट्टी के दिन—प्रायः रविवार को ही। प्रायः देर से उठने के कारण उसके बच्चे उसे देख नहीं पाते हैं और जब रात को लौटता है, वे उस समय सोये होते हैं। अतः उसका बड़ा नटखट लड़का मुन्ना उसे प्यार से 'संडे

फादर' कहता है। छोटी भी अपने भाई से सीखकर उसको 'शंडे फादल' कहने का प्रयत्न करती है।

इतने में वह सड़क के एक चौराहे पर पहुँचता है जहां कि पास ही उसका अपना मकान है। वहाँ पहुँचकर उसका पिक्चर देखने का 'मूड' बना। मगर उसे लगा कि वह बहुत थका हुआ है। मन की थकान ने उसके सारे शरीर को शिथिल कर डाला या तन की थकावट उसके तन-मन पर हावी हुई, वह तय नहीं कर पाया, बल्कि घर चलने का इरादा ही किया।

'घर!' कुछ देर के लिए उसको यह शब्द अजनबी-सा लगा मानो उसके कोश में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। सुबह से लेकर रात गए तक वह घर से बाहर होता है। घर पहुँच-कर उसमें इतनी थकान होती है कि मृत्यु-शय्या पर कफन ओढ़े इस तरह सो जाता है जैसे उठने का अब नाम ही नहीं लेगा। आरम्भ से ही पत्नी की उफनती जवानी को तिरस्कृत करता आया है। प्रातः न जाने कौन अज्ञात आकर्षण उसको इस शय्या से उठने के लिए विवश करता है, सज-धज कर वह दिन के 'गहर-गहर' में तल्लीन हो जाता है।

दबे पांव वह घर के दरवाजे के सामने इस तरह खड़ा हो गया मानो किसी पराये का मकान हो।

—कोई है! उसने आहिस्ता-आहिस्ता कई बार दरवाजा खटखटाया।

दरवाजा कुछ देर के बाद खुला। शायद बेमौके दरवाजा खटखटाने के कारण इसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया हो।

—ओह!·····आप!!·····इस समय!!! सहसा निर्मला को विश्वास नहीं हुआ कि वह उसी का पति है।

—'.....' वह मौन है। केवल अपराधी की तरह देखता है जैसे रंगे हाथों उसे चोरी करते पकड़ा गया हो।

—'.....' चुप्पी धारण करके वह भी उसको घूर-घूर-कर देखने लगी।

कुछ देर के लिए दोनों जड़वत् हो गये और वातावरण में एक सन्नाटा-सा छा गया।

—क्यों निर्मला मुझे पहचाना नहीं ? मैं हूँ राकेश..। कुछ देर के बाद राकेश इस तरह बोला मानो इस बात की तस्दीक करवाना चाहता हो कि बस वह ही उसका पति है।

निर्मला की आंखें छलछलाईं। उसे लगा कि उसका खोया हुआ पति उसे पुनः मिल गया। अन्दर अपने कमरे में जाकर वे स्खलित हो गये। इतने में उनका नटखट मुन्ना जोकि शनि-वार के कारण स्कूल से सवेरे आ गया था, ऊपर उनके कमरे में प्रविष्ट हुआ।

—मम्मी ! मम्मी !! ....मुन्नी ! ओ मुन्नी !!! .... हमारे 'संडे फादर' आज शनिवार को ही आये हैं।

मुन्नी दौड़ते-हांफते कमरे में प्रविष्ट हुई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। मगर अपने भाई को प्रसन्न देखकर या वातावरण में आकस्मिक परिवर्तन का अनुभव करके वह भी प्रसन्नता का अनुभव करने लगी। बड़े भाई के स्वर के साथ स्वर मिलाकर वह भी ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—शेटल डे फादल ! शेटल डे फादल !! ....

———